श्री पंचस्तवी

अनुवादक

शैवाचार्य महात्मा श्री लक्ष्मण जी महाराज
(श्री ईश्वर-स्वरूप जी)



प्रभा देवी प्रभाकर



श्री पंचस्तवी

अनुवादक

शैवाचार्य महात्मा श्री लक्ष्मण जी महाराज
(श्री ईश्वर-स्वरूप जी)



संपादक

प्रभा देवी प्रभाकर

शारिका पब्लिशिंग दिल्ली

Bettina Bäumer

श्री धर्माचार्यकृता पंचस्तवी



अनुवादक

शैवाचार्य महात्मा श्री लक्ष्मण जी महाराज
(श्री ईश्वर-स्वरूप जी)

Ishvar Ashram
Śivarātri
5. 3. 1989

संपादक

प्रभा देवी प्रभाकर

शारिका पब्लिशिंग दिल्ली द्वारा प्रकाशित

चित्रण एवं मुद्रण : आकाशदीप प्रिन्टर्स 20, अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002

श्री धर्माचार्य कृता
पंचस्तवी

दो शब्द

कश्मीर प्रान्त का कौन देवी भक्त 'पंचस्तवी' पुस्तिका के सरस श्लोकों से परिचित नहीं है। आज तक सभी भक्त, मुनि तथा योगि-जन, आलंकारिक भाषा में वर्णित इन देवी के श्लोकों का रसास्वादन लेते रहे। हमारे गुरुवर्य हमें चौदह वर्ष पूर्व ई० सन् १९७३ में इसी पंचस्तवी के श्लोकों की व्याख्या रविवासरीय सत्संग में देते रहे। इन रहस्यपूर्ण श्लोकों के मार्मिक तत्त्वों तथा आन्तरिक अर्थों को सभी शिष्यों के सम्मुख जतलाते रहे। गुरु-जनों की आन्तरिक सत् प्रेरणा से विवश होकर हमने उन्हीं दिनों इस अमूल्य अर्थ को लिख कर सुरक्षित रखना चाहा। फल यह हुआ कि यह निधि कई वर्षों तक इसी रूप में हमारे पास रही। ई० सन् १९७४ में हमारे गुरुवर्य ने जम्मू जाना था वे स्वयं कह बैठे कि जिस पंचस्तवी को तुम ने सुरक्षित रखा है उस की पांडुलिपि हम तुम्हें जम्मू में बना देंगे। गुरु-जनों की वाणि अन्यथा तो होती नहीं अतः जम्मू से आकर महाराज जी ने हमें यह पांडुलिपि पाद-टिप्पणियों से अलंकृत करके दी। तब से आज तक इस का रूप इसी पांडुलिपि में हमारे पास रहा।

ई० सन् १९८७ में, मैं तथा ब्रह्मवादिनी सुश्री देवी शारिका जी दिल्ली आये। यहां हमें श्री सुरेश जी सोपोरी ने इस पुस्तिका को छपाने के लिए प्रोत्साहन दिया और साथ ही छपाने में सहायता भी दी। अतः उनके इस सुपरामर्श के लिए हम हृदय से उन्हें धन्यवाद देते हैं।

इस पुस्तिका को हमने गुरुवर्य के नाम से ही छपवा दिया। सभी अर्थों के मर्मज्ञ तो तथ्य शब्दों में वे ही हैं। उनका हृदय सदा हम शिष्यों के लिए द्रवित बना रहे।

आज हमें हर्ष है कि यह पंचस्तवी की पुस्तिका सभी भक्तों तथा शक्ति के उपासकों के सम्मुख एक नवीन भावों को लेकर उपस्थित हो रही है। इस से यदि वे आत्मिक लाभ उठायेंगे तो हमारा इस पुस्तक को छपाना सफल होगा।

प्रभा देवी
वि०स० २०४३, ई० सन् १९८७

ओं

श्रीपञ्चस्तवी । लघुस्तवः ।।१।।

श्रीत्रिपुरसुन्दर्यै नमः

ऐन्द्रस्येव शरासनस्य दधती मध्ये ललाटं प्रभां
शौक्लीं कान्तिमनुष्णगोरिव शिरस्यातन्वती सर्वतः।
एषासौ त्रिपुरा हृदि द्युतिरिवोष्णांशोः सदाहः स्थिता
छिन्द्यान्नः सहसा पदैस्त्रिभिरघं ज्योतिर्मयी वाङ्मयी ।।१।।

(अन्वय पदच्छेद-सहित)

ऐंद्रस्य शरासनस्य प्रभाम् इव मध्येललाटं दधती, अनुष्णगोः शौक्लीं कान्तिम् इव शिरसि सर्वतः आतन्वती, उष्णांशोः सदा अहः स्थिता द्युतिरिव हृदि दधती, एषा असौ (सौ)त्रिपुरा ज्योतिर्मयी वाङ्मयी त्रिभिः पदैः सहसा नः अघं छिन्द्यात् ।।१।।

(अर्थ)

इन्द्र-धनुष की भांति (अनेकानेक) कांति को जिस ने ललाट (मस्तक) के बीच में धारण किया है, शीतल किरणों वाले चन्द्रमा की श्वेत-ज्योति को (जिस ने) शिर अर्थात् ब्रह्माण्ड में संपूर्ण रूप से फैलाया है अर्थात् प्रकाशित किया है और (जिस ने) उष्ण- किरणों वाले सूर्य के प्रकाश को सदा हृदय में स्थान दिया है वही इन तीन स्वरूपों को पूर्ण करने वाली त्रिपुरा देवी प्रकाशविमर्शमयी अपने (ऐंद्रस्य-इस में 'ऐं' पद से, शौक्लीं -इस में 'क्लीं' पद से एषासौ–इस में 'सौः' पद से) इन तीन पदों से हमारे पापों को क्षण-मात्र में नष्ट करे ।।१।।

या मात्रा त्रपुसीलतातनुलसत्तन्तूत्थितिस्पर्धिनी
वाग्बीजे प्रथमे स्थिता तव सदा तां मन्महे ते वयम् ।
शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजननव्यापारबद्धोद्यमा
ज्ञात्वेत्थं न पुनःस्पृशन्ति जननीगर्भेऽर्भकत्वं नराः ।।२।।

(पदच्छेद समन्वय-सहित)

या मात्रा त्रपसी-लता-तनु-लसत्-तन्तु-उत्थिति-स्पर्धिनी तव प्रथमे वाग्-बीजे स्थिता, तां, वयं सदा विश्व-जनन व्यापार-बद्ध-उद्यमा ते कुण्डालिनी-शक्तिः-इति मन्महे। इत्थं ज्ञात्वा नराः जननी-गर्भे अर्भकत्वं न पुनः स्पृशन्ति।।

(अर्थ)

आप के प्रथम-बीजाक्षर (ऐं) में जो आप की उत्कृष्ट कला, त्रपसी नामक लता-विशेष के अति सूक्ष्म तन्तुओं के समान विकास को प्राप्त हुई तथा उस के साथ होड़ अर्थात बराबरी करने पर तुली हुई है, उसे हम जगत को उत्पन्न करने के कार्य में कटिबद्ध बनी हुई आप की ही कुण्डलिनी शक्ति मानते हैं। इस प्रकार (आप की कुण्डलिनी-शक्ति के) स्वरूप को जान कर अर्थात् अनुभव करके मनुष्य मां के गर्भ में बालक-भाव को कदापि स्पर्श नहीं करते हैं, अर्थात् वे सदा के लिये जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होते हैं ।।२।।

दृष्ट्वा संभ्रमकारि वस्तु सहसा ऐ ऐ इति व्याहृतं
येनाकूतवशादपीह वरदे बिन्दुं विनाप्यक्षरम् ।
तस्यापि ध्रुवमेव देवि तरसा जाते तवानुग्रहे ।
वाचः सूक्तिसुधारसद्रवमुचो निर्यांति वक्त्राम्बुजात् ।।३।।

(पदच्छेद समन्वय-सहित)

वरदे! देवि! इह संभ्रम-कारि वस्तु दृष्ट्वा आकूत-वशात्-अपि येन बिन्दुं विना अपि 'ऐ ऐ'—इति अक्षरं सहसा व्याहृतम्। तस्य-रस-द्रव-मुचः वाचः वक्त्राम्बुजात् तरसा निर्यान्ति ।।३।।

(अर्थ)

हे अभीष्ट वर को देने वाली देवी! जिस व्यक्ति ने कोई भयप्रद वस्तु शेर सांप आदि देख कर बिना किसी अभिप्राय से भय-वशात् ही ऐ ऐ — अक्षर का बिन्दु के बिना ही उच्चारण किया हो ऐसे व्यक्ति पर भी यदि आप अनुग्रह करें तो निःसन्देह उस व्यक्ति के मुख-कमल से उसी क्षण ऐसी कविता प्रकट होती है जो कि अमृत- रस-धाराओं की परिचायक होती हैं। अभिप्राय यह है कि भगवती के प्रथम बीजाक्षर 'ऐं' की इतनी महिमा है कि यदि कोई व्यक्ति भूल से भी ऐ ऐ — का ही उच्चारण करे तो उसे भगवती अपूर्व कवित्व-शक्ति प्रदान करती हैं ।।३।।

यन्नित्ये तव कामराजमपरं मन्त्राक्षरं निष्कलं
तत्सारस्वतमित्यवैति विरलः कपिूचद्बुधश्चेद्भुवि
आख्यानं प्रतिपर्व सत्यतपसो यत्कीर्तयन्तो बुधाः *
प्रारम्भे प्रणवास्पदप्रणयितां नीत्वोच्चररन्ति स्फुटम् ।।४।।

(पदच्छेद समन्वय-सहित)

हे नित्ये! यत् तव अपरं कामराजं निष्कलं मन्त्राक्षरम् (अस्ति)तत् सारस्वतं भुवि कश्चिद् विरलः बुधः चेत् अवैति, यत्-प्रभावात् सत्यतपसः आख्यानं प्रतिपर्व द्विजाः कीर्तयन्तः प्रारम्भे प्रणव-आस्पद- प्रणयितां नीत्वा स्फुटम् उच्चरन्ति ।।४।।

(अर्थ)

हे सदा एकवत् रहने वाली देवी! आप का जो दूसरा कामराज-नामक निष्कल अर्थात् कलना-रहित अथवा 'क-ल'-रहित क्लीं' बीजाक्षर है, इस मन्त्र का जप, यदि कोई विरला बुद्धिमान् व्यक्ति इस संसार में करे तो वह सारस्वत ल्कीं बीजाक्षर का साक्षात्कार करके सरस्वती देवी के अनुग्रह का पात्र बनता है। इस बीजाक्षर के जप के संबन्ध में यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि सत्यावादी श्री हरिश्चन्द्र ने इस मन्त्र को सिद्ध किया था, जिस के

* द्विजाः— इत्येव पाठः।

फल-स्वरूप सभी ब्राह्मण प्रत्येक उत्सव के प्रारम्भ में उस की कथा उसी आदर से वर्णन करते हैं, जिस आदर से ओं का उच्चारण प्रत्येक यज्ञ के आद्य में किया जाता है ।।४।।

यत्सद्यो वचसां प्रवृत्तिकरणे दृष्टप्रभावं बुधै-
स्तार्तीयीकमहं नमामि मनसा त्वद्बीजमिन्दुप्रभम्।
अस्त्वौर्वोऽपि सरस्वतीमनुगतो जाड्याम्बुविच्छित्तये
गोशब्दो गिरि वर्त्तते स नियतं यो गं विना सिद्धिदः
।।५।।

(अन्वय)

यत् बुधैः सद्यः वचसां प्रवृत्तिकरणे दृष्ट-प्रभावम् (अस्ति) तत् त्वद् तार्तीयीकम् इन्दु-प्रभं बीजम् अहं मनसा नमामि। [सिद्धमेतत्]। यत् सरस्वतीम् अनुगतः और्वोऽपिजाड्य-अम्बु-विच्छित्तये (गौ इति) अस्तु। स गौ शब्दः नियतं गिरि वर्तते यः गं विना [औ-इति रूपेण] सिद्धि-दः (भवति) ।।५।।

---

* सत्य-तपस्वी हरिश्चन्द्र ने आजीवन सत्य बोलने का ब्रत ले रखा था। उस की इस प्रतिज्ञा को भंग करने के लिए इन्द्र ने शिकारी का रूप धारण किया और वे आखेट करते हुए उस के पास आये। इन्द्र (शिकारी) के आगे आगे एक हिरण का बच्चा सत्य-वादी हरिश्चन्द्र के सामने से जा निकला। शिकारी ने सत्यवादी हरिश्चन्द्र से अपने शिकार के विषय में पूछा कि वह किस मार्ग से निकल कर भागा है। उस के प्रश्न का उत्तर प्रतिभाशाली सत्य-संघ हरिश्चन्द्र ने इस श्लोक में दिया—

*या पश्यति न सा ब्रूते या ब्रूते सा न पश्यति।
अहो व्याध। स्वकार्यार्थी कं पृच्छसि मुहुर्मुहुः।।

*आंख देखती है, परन्तु वह कह नहीं सकती। जिह्वा कहती है, पर वह देख नहीं सकती। इसलिये हे व्याध! अपने प्रयोजन के लिये तुम किस से पूछते हो?

उस के इस अलौकिक उत्तर को सुन कर इन्द्र अपना सा मुंह ले कर रह गया। अन्त में उस ने यही निश्चय किया कि सत्य-वादी हरिश्चन्द्र ने अवश्य क्लीं बीजाक्षर की उपासना से सरस्वती का अनुग्रह प्राप्त किया है तभी उस की वाणी में इतना चातुर्य तथा सत्य-पालन की शक्ति प्राप्त हुई है।

(अर्थ)

मैं चन्द्र-तुल्य-दीप्ति से युक्त आप के उस तीसरे बीजाक्षर (सौः) को मन से नमस्कार करता हूँ, जिस का प्रभाव ज्ञानी-जनों ने क्षण-मात्र में देखा है जिस के फल-स्वरूप उन की वाणियों में निरर्गल कवित्व-शक्ति प्राप्त होती है। वह सरस्वती को सिद्ध कराने वाला (सौः) मन्त्र अज्ञान रूपी जल को भस्म करने में वाडवाग्नि के समान बन जाता है, तथा उस सारस्वत (सौः) की छाया का अनुकरण करने वाला (गौ) शब्द, जो वाणी के अर्थ में प्रयुक्त होता है, ग के बिना औ के रूप से ही सिद्धि-प्रद बन जाता है। अथवा इस का दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि यह सरस्वती का बीजाक्षर योग-किया करने के बिना ही अभीष्ट-सिद्धि प्रदान करता है ।।५।।

एकैकं तव देवि बीजमनघं सव्यञ्जनाव्यञ्जनं
कूटस्थं यदि वा पृथक्क्रमगतं यद्वा स्थितं व्युत्क्रमात्।
यं यं काममपेक्ष्य येन विधिना केनापि वा चिन्तितं
जप्तं वा सफलीकरोति सहसा तं तं समस्तं नृणाम्।।६।।

(पदच्छेद समन्वय-सहित)

देवि! तव एकैकम् अनघं बीजं सव्यञ्जन-अव्यञ्जनं यदि वा कूटस्थं, यद्वा पृथक्- क्रम-गतं, यद्वा व्युत्क्रमात् स्थितं येन केनापि वा विधिना यं यं कामम् अपेक्ष्य चिन्तितं जप्तं वा (स्यात्) तं तं समस्तं कामं नृणां सहसा सफली-करोति ।।६।।

(अर्थ)

हे देवि! 'ऐं' 'क्लीं' 'सौः'– इन में से आप का प्रत्येक निष्पाप बीजाक्षर व्यञ्जन-सहित (ऐं, क्लीं, सोः), व्यञ्जन-रहित + (ऐ, ई, औः) या कूटस्थ + ऐंक्लींसौः) अथवा भिन्न-क्रम में ठहरा हुआ ऐं, अथवा क्लीं या केवल सौः, या उलटे क्रम से (सौः– क्लीं -ऐं) जिस किसी वि[illegible] से जो कोई व्यक्ति ध्यान करता है अथवा उस का जप करता है, उन मनुष्यों की सभी अभिलाषाओं को वह बीजाक्षर उसी क्षण सफल बना देता है ।।६।।

वामे पुस्तकधारिणीमभयदां साक्षस्रजं दक्षिणे
भक्तेभ्यो वरदानपेशलकरां कर्पूरकुन्दोज्ज्वलाम्।
उज्जृम्भाम्बुजपत्रकान्तनयनस्निग्धप्रभालोकिनीं
ये त्वामम्ब न शीलयन्ति मनसा तेषां कवित्वं कुतः ।।७।।

(अन्वय पदच्छेद-सहित)

अम्ब! वामे पुस्तकधारिणीम् अभयदां (च)। दक्षिणे साक्षस्रज भक्तेभ्यः वरदान-पेशलकरां (च)। (एवं) कर्पूर-कुन्द- उज्ज्वलाम्, उज्जृम्भ-अम्बुज-पत्र-कान्त-नयन-स्निग्ध-प्रभा-आलोकिनीं त्वां ये मनसा न शीलयन्ति, तेषां कवित्वं कुतः (स्यात्) ।।७।।

(अर्थ)

हे माता! (आप का स्वरूप चार भुजाओं से युक्त है) आप बायें हाथ में पुस्तक को धारण किये हुए हैं, दूसरे बायें हाथ में अभय-मुद्रा को दिखा रही हैं। ऊपर के दाहिने हाथ में अक्षमाला (जय-माला) को लिये हुई हैं तथा चौथा हाथ भक्तों को वर देने के कारण कोमल बना हुआ है। इस के अतिरिक्त आप काफूर तथा कुन्द-फूल की भांति उज्जवल तथा विकसित कमल-पत्र के समान सुन्दर नेत्रों से युक्त प्रेममयी अनुग्रह-दृष्टि रखती हैं। जो जन आप के ऊपर वर्णित स्वरूप का ध्यान मन से कदापि नहीं करते, भला उनको पाण्डित्य कैसे और क्यों प्राप्त हो सकता है ।।७।।

ये त्वां पाण्डुर पुण्डरीकपटलस्पष्टाभिरामप्रभां
सिंचन्तीममृतद्रवैरपि शिरो ध्यायन्ति मूर्ध्नि स्थिताम्।
अश्रान्तं विकटस्फुटाक्षरपदा निर्याति वक्त्राम्बुजा-
त्तेषां भारति! भारती सुरसरित्कल्लोललोलोर्मिवत् ।।८।।

(अन्वय पदच्छेद-सहित)

भारति! पाण्डुर-पुण्डरीक-पटल-स्पष्ट-अभिराम-प्रभाम् अमृत द्रवैः इव सिन्चन्तीं मूर्ध्नि स्थितां ये शिरः ध्यायन्ति, तेषां वक्त्र-अम्बुजात् सुरसरित् कल्लोल-लोल-ऊर्मिवत् विकट- स्फुट -अक्षर-पदा भारती अश्रान्तं निर्याति ।।८।।

(अर्थ)

हे सरस्वती देवी! आप सफेद पुण्डरीक कमल के समूह की भांति स्फीत (निर्मल) तथा सुन्दर दीप्ति से युक्त हैं। आप ऐसी प्रतीत होती हैं, मानो बहते हुए अमृत के द्वारा भक्तों को सिंचन करती हैं। ऐसे आप के स्वरूप का ध्यान जो भाग्य-शाली व्यक्ति करते हैं, उन के मुख-कमल से गंगा-नदी की गहन तथा (चञ्चल) प्रवहन-शील लहरों की भांति उछलती हुई, सुन्दर स्पष्ट अक्षरों तथा पदों से युक्त वाणी अर्थात् कविता अनथक रूप से प्रसरित होती है ।।८।।

ये सिन्दूरपरागपुंजपिहितां त्वत्तेजसा द्यामिमा-
मुर्वीञ्चापि विलीनयावकरसप्रस्तारमग्नामिव।
पश्यन्ति क्षणमप्यनन्यमनसस्तेषामनङ्गज्वर-
क्लान्तास्त्रस्तकुरंगशावकदृशोवश्या भवन्ति स्फुटम् ।।९।।

(अन्वय पदच्छेद-सहित)

ये अनन्य-मनसः (सन्तः) त्वत्-तेजसा इमां द्यां सिन्दूर-पराग-पुञ्ज-पिहिताम् (इव) (तथा इमाम्) उर्वीं च अपि विलीन-यावक-रस-प्रस्तार-मग्नाम् इव क्षणमपि पश्यन्ति। तेषाम् अनङ्ग-ज्वर-क्लान्ताः त्रस्त-कुरंग-शावक-दृशः (शक्तयः) स्फुटं वश्याः भवन्ति ।।९।।

(अर्थ)

जो व्यक्ति एकाग्र मन से आप के अरुण-वर्ण तेज के द्वारा इस आकाश को सिन्दूर की धूलि के समूह से रंजित बनी हुई तथा इस पृथ्वी को पिगले हुए लाख के रस में सनी हुई जैसी देखते हैं अर्थात् आकाश और पृथ्वी में व्याप्त बने हुए आप के अरुण-वर्ण-स्वरूप का साक्षात्कार एक क्षण के लिये भी करते है, उन को संकल्प-विकल्प के कारण दुःखी बनी हुई (अपनी) इन्द्रियां उसी भांति वश हो जाती हैं, जिस भांति स्वभावतः चञ्चल और डरपोक

हिरण के बच्चों की दृष्टि किसी शेर आदि को देख कर आप ही आप सहम जाती है ।।९।।*

चञ्चत्कांचनकुण्डलाङ्गदधरामाबद्ध कांचीस्रजं
ये त्वां चेतसि तद्गते क्षणमपि ध्यायन्ति कृत्वा स्थितिम्।
तेषां वेश्मसु विभ्रमादहरहः स्फारीभवन्त्यश्चिरं
माद्यत्कुंजरकर्णताल तरलाः स्थैर्यं भजन्ते श्रियः ।।१०।।

(अन्वय पदच्छेद सहित)

(हे देवि!) ये तद्गते चेतसि स्थितिं कृत्वा चञ्चत्-कांचन- कुण्डल-अंगद-धराम् आबद्ध-कांची- स्रजं त्वां क्षणमपि ध्यायन्ति, तेषां वेश्मसु माद्यत्-कुञ्जर-कर्णताल-तरलाः श्रियः विभ्रमाद् अहरहः स्फारी-भवन्त्यः चिरं स्थैर्यं भजन्ते ।।१०।।

(अर्थ)

जो व्यक्ति एकाग्र बने हुए हृदय में आप का स्वरूप चमकीले स्वर्ण-कुण्डलों से युक्त, बाजूबन्द को धारण किये हुए तथा सोने का गजरा बान्धे हुए स्वरूप से युक्त आप का ध्यान एक क्षण के लिये ही करते हैं, उन के घरों में मद-मस्त हाथी के चञ्चल कानों की भांति सदा चलायमान् और इसी लिये अस्थिर बनी हुई भी लक्ष्मी (संपदा) बहुत समय के लिये विपुल-रूप से सदैव स्थिर

---

* भाव यह है कि ऐसे भक्त की इन्द्रियां अपने चञ्चल स्वभाव को छोड़ कर सदा स्वात्मानुसंधान में ही लगी रहने से एकाग्र बन जाती हैं। श्रीमद्भगवद्गीता के 'तमेव शरणं गच्छ'—इस श्लोक की व्याख्या करते हुए आचार्य अभिनवगुप्त जी ने इन्हीं उपरोक्त भावों की पुष्टि की है। यथा—

'नहि निशिततरनखर कोटि विदारत समद करि करट गलित मुक्ताफलनिकर परिकर प्रकाशित प्रतापमहसि सिंहकिशोरके गुहामधितिष्ठति चपलमनसो विद्रवणमात्र-बलशालिनो हिरणपोतकाः स्वैरं स्वव्यापारपरिशीलना पटुभावमवलम्बन्ते—इति ।

अर्थात—जिस भांति किशोर सिंह अति तीक्ष्ण नखों के अग्रभाग से, मदमस्त हाथी के कपोलों को विदारित करके उस गंडस्थल में से निकाले हुए मोतियों की प्रभा से प्रभावित बन कर, अपनी गुफा में बैठा हो और चंचल मन वाले, स्वतन्त्रता पूर्वक विचरने वाले, भागने में पटु स्वभाव वाले छोटे छोटे हिरण उस (सिंह) को देख कर अपनी स्वाभाविक भागने की चतुरता का आश्रय न लेकर अर्थात् सहम कर उस स्फूर्ति को भूल जाते हैं। उसी भांति परमेश्वर के अनन्य परायण रहने से आगामि कर्म तथा संचित कर्मों का फल नष्ट हो जाता है।

रूपता से अपना स्थान बना लेती है। भाव यह है कि आप के भक्तों के घर से लक्ष्मी कभी भी जाने का नाम नहीं लेती है, अतः वे सदा समृद्धि-शाली बने रहते हैं ।।१०।।

आर्भटया शशिखडमंडितजटाजूटां नृमुण्डस्रजम्
बन्धूककुसुमारुणाम्बरधरां प्रेतासनाध्यासिनीम्।
त्वां ध्यायन्ति चतुर्भुजां त्रिनयनामापीनतुंगस्तनीं
मध्ये निम्नवलित्रयांकिततनुं त्वद्रूपसंवित्तये ।।११।।

(अन्वय पदच्छेद-सहित)

शशिखंड-मण्डित-जटां, नृ-मुण्ड-स्रजं , बन्धूक-कुसुम-अरुण-अम्बार-धरां, प्रेतासन-अध्यासिनीं, चतुर्भुजां, त्रिनयनाम्, आपीन-तुंग-स्तनीम्, मध्ये निम्न-वलि-त्रय-अंकित-तनुं त्वां (भक्ताः) त्वद्रूप-संवित्तये त्वाम आर्भट्या ध्यायन्ति ।।११।।

(अर्थ)

हे देवी! आप की जटाओं के समूह पर चन्द्रमा का (अर्धाकार) खण्ड ऐसा शोभित होता है मानो आप ने किनारी की बन्धी बान्ध रक्खी है। गले में आप ने मरे हुए मनुष्यों के सिरों की माला धारण की है। आप बन्धूक नामक फूलों की तरह लाल वस्त्रों को धारण करती हैं, और आप शिव रूपी शव का आसन बना कर उस पर बैठी हैं। आप चार भुजाओं वाली हैं। तीन नेत्रों वाली हैं। बड़े और उन्नत वक्षस्थल अर्थात् ज्ञान और क्रिया से युक्त आप का स्वरूप है तथा इन्हीं आप के ज्ञान-क्रिया रूपी स्तनों के मध्य में तीन गहरी भव-अभव-और अतिभव रूपी कुण्डलाकार लकीरें सुशोभित हुई हैं—इस प्रकार आप के स्वरूप का साक्षात्कार करने के लिये भक्त-जन आप का ध्यान वीरात्मक लास्यवृति में सदा करते रहते हैं ।।११।।

जातोऽप्यल्पपरिच्छदे क्षितिभुजां सामान्यमात्रे कुले
निःशेषावनिचक्रवर्तिपदवीं लब्ध्वा प्रतापोन्नतः।
यद्विद्याधरवृन्दवन्दितपदः श्रीवत्सराजोऽभवद्
देवि! त्वच्चरणाम्बुज प्रणतिजः सोऽयं प्रसादोदयः ।।१२।।

(अन्वय पदच्छेद-सहित)

(स) श्रीवत्स--राजः क्षितिभुजां सामान्यमात्रे कुले अल्प-परिच्छदे जातः अपि, यत् निःशेष-अवनि-चक्रवर्ति-पदवीं लब्ध्वा प्रताप- उन्नतः (सन्) विद्याधर-वृन्द-वन्दित-पदः अभवत्, सः अयं त्वत्-चरणाम्बुज-प्रणति-जः प्रसादोदयः तस्य आसीत् ।।१२।।

(अर्थ)

राजाओं के साधारण कुल में एक सामान्य राजसेवक के रूप में उत्पन्न होने पर भी जो 'वत्सराज' नामक सम्राट् सम्पूर्ण पृथ्वी पर चक्रवर्ति-पदवी को प्राप्त करके ऐश्वर्य से उन्नत मस्तक वाला बना और जिस के चरणों की वन्दना (नित-प्रति) विद्याधरों का समूह करने लगा। हे जगन्माता! (सच तो यह है कि) उस का सभी यह ऐश्वर्य आप के चरण-कमलों में नत-मस्तक रहने से उत्पन्न आप के ही अनुग्रह का प्रत्यक्ष फल था ।।१२।।

चण्डि त्वच्चरणाम्बुजार्चनविधौ बिल्वीदलोल्लुण्ठन-
त्रुटयत्कण्टककोटिभिः परिचयं येषां न जग्मुः कराः।
ते दण्डांकुशचक्रचापकुलिशश्रीवत्समत्स्यांकितै-
र्जायन्ते पृथिवीभुजः कथमिवाम्भोजप्रभैः पाणिभिः ।।१३।।

(अन्वय पदच्छेद-सहित)

चण्डि! त्वत्-चरणाम्बुज-अर्चन-विधौ बिल्वी-दल-उत् लुण्ठन-त्रुट्यत्-कण्टक-कोटिभिः परिचयं येषां कराः न जग्मुः, ते दण्ड-अंकुश-चक्र-चाप-कुलिश-श्रीवत्स-मत्स्य-अङ्कितैः अम्भोज-प्रभैः पाणिभिः संयुक्ताः पृथिवीभुजः कथमिव जायन्ते ।।१३।।

(अर्थ)

हे चाण्डका भगवती! जिन व्यक्तियों के हाथों ने आप के चरण-कमलों की पूजा करने के लिए बिल्वपत्रों को काटते हुए (उस बिल्व-वृक्ष में स्थित)कांटों के तीखे अग्रभाग के चुभने से उत्पन्न दुःख का अनुभव न किया हो, वे जन

भला (आगामी जन्म में) दण्ड, अंकुश, चक्र, धनुष, वज्र, लक्ष्मी तथा मछली की आकृतियों से अंकित कमल के समान हाथों से युक्त चक्रवर्ती सम्राट किस भांति बन सकते हैं। कहने का भाव यह है कि जो भक्त, जगज्जननी की, पूजा के लिए अनेक कष्टों को सहन करता है उसी के हाथ दूसरे जन्म में दण्ड आदि चिन्हों से युक्त होते हैं, जिस के फल-स्वरूप वह सम्राट बनने की योग्यता रखता है ।।१३।। *

विप्राः क्षोणिभुजो विशस्तदितरे क्षीराज्यमध्वासवै-
स्त्वां देवि त्रिपुरे परापरमयीं सन्तर्प्य पूजाविधौ।
यां यां प्रार्थयते मनः स्थिरधियां तेषां त एव ध्रुवं
तां तां सिद्धिमवाप्नुवन्ति तरसा विघ्नैरविघ्नीकृताः ।।१४।।

(अन्वय पदच्छेद-सहित)

हे देवि! हे त्रिपुरे! विप्राः क्षोणि-भुजः विशः तदितरे क्षीर-आज्य-मधु-आसवैः, परापरमयीं त्वां पूजाविधौ संतर्प्य, तेषां स्थिर-धियां मनः यां यां प्रार्थयते तां तां सिद्धिं ते विघ्नैः—अविघ्नी-कृताः (सन्तः) तरसा एव ध्रुवं प्राप्नुवन्ति ।।१४।।

(अर्थ)

हे देवी! हे त्रिपुरा भगवती! (आप के भक्त-जन) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र क्रम से दूध, घी शहद तथा मदिरा से आप (विश्वोत्तीर्णा और

---

* शास्त्रों का कहना है कि जिस व्यक्ति के हाथों में—दण्ड, अंकुश, चक्र, धनुष, वज्र, लक्ष्मी तथा मत्स्य—इन में से किसी एक का भी चिन्ह अंकित हुआ हो, वह निःसन्देह चक्रवर्ती राजा बन जाता है। स्मरण रहे कि ऐसा चक्रवर्ती सम्राट् जगन्माता की कृपा से ही होता है।

कहा भी है:—

मुन्यन्नं ब्राह्मणस्योक्तमाज्यं क्षत्रियवैश्ययोः।
मधुप्रधानं शूद्रस्य .... ।।

अर्थात् ऋषियों के-अन्न (दूध) से ब्राह्मण को अपना इष्टदेव पूजना चाहिए। घी आदि से क्षत्रिय और वैश्य को तथा मधु-आदि से शूद्र को अपना देव पूजना चाहिये।

विश्वमयी) देवी की पूजा करके आप को सन्तुष्ट करते हैं। उस के फल-स्वरूप उन स्थिरबुद्धि वालों का मन जिस भी यथाभिलषित वस्तु की याचना आप के सम्मुख करता है वे अभीष्ट सिद्धियां उसे निर्विघ्न बन कर प्राप्त होती हैं ।।१४।।

शब्दानां जननी त्वमत्र भुवने वाग्वादिनीत्युच्यसे
त्वत्तः केशववासव प्रभृतयोऽप्याविर्भवन्ति स्फुटम्।
लीयन्ते खलु यत्र कल्पविरमे ब्रह्मादयस्तेऽप्यमी
सात्वं कांचिदाचिन्त्यरूपमहिमा शक्तिः परा गीयसे ।।१५।।

(अन्वय पदच्छेद-सहित)

अत्र भुवने त्वं शब्दानां जननी वाग्वादिनी इति उच्यसे। केशव-वासव-प्रभृतयः अपि स्फुटं त्वत्तः आविर्भवन्ति। ते अपि अमी ब्रह्मादयः खुल यत्र कल्पविरमे लीयन्ते, सात्वं काचित् अचिन्य-रूप महिमा परा-शक्तिः गीयसे ।।१५।।

(अर्थ)

हे देवी! इस संसार में आप समस्त शब्द-भण्डार की जननी अर्थात कारण हैं। आप को वाग्वादिनी अर्थात् सरस्वती कहते हैं। आप के स्वरूप से ही नारायण, इन्द्र आदि देवता भी प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होते हैं। कल्प के अन्त में वे सभी ब्रह्मादि देवता-गण तथ्यतः आप के स्वरूप में लीन बनते हैं अर्थात् अपनी स्थिति को खो बैठते हैं। वही आप का अचिन्त्य महिमा वाला स्वरूप परा शक्ति के नाम से कहा जाता है ।।१५।।

देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्वरा-
स्त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करमथो त्रिब्रह्म वर्णास्त्रयः।
यत्किंचिज्जगति त्रिधा नियमितं वस्तु त्रिवर्गात्मकं
तत्सर्वं त्रिपुरेति नाम भगवत्यन्वेति ते तत्त्वतः ।।१६।।

(अन्वय पदच्छेद-सहित)

त्रितयं देवानां, त्रयी हुतभुजां, शक्तित्रयं, त्रिस्वराः, त्रैलोक्यं, त्रिपदी, त्रिपुष्करम्, अथ त्रिब्रह्म, त्रयः वर्णाः - (इत्येवं)यत्किंचित् त्रिवर्गात्मकं वस्तु जगति त्रिधा नियमितं, तत्सर्वं त्रिपुरा भगवती-इति ते नाम तत्त्वतः अन्वेति ।।१६।।

(अर्थ)

ब्रह्मा, विष्णु-रुद्र' तीन देवताओं का वर्ग, 'ऋक्' यजु, साम'—वेदत्रयी अग्नि देवता की तीन शक्तियां—गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्निः', तीन स्वर-'उदात्त, अनुदात्त, स्वरित', तीन लोक—'भूः, भुवः, स्वः', गायत्री के तीन पद— भूः, भुवः, स्वः', ज्योतिष-शास्त्र में वर्णित तीन पुष्कर-योग, तीन ब्रह्म-'ओं, तत्, सत्' और तीन वर्ण-'अ, उ, म'—इसी भांति संसार में जो भी तीन तीन रूप वाली वस्तु नियमित कही गई हैं, वह सभी 'त्रिपुरा' अर्थात् तीन स्वरूपों को पूर्ण करने वाली भगवती के नाम के ही अनुगामी अर्थात् परिचायक हैं ।।१६।।

लक्ष्मीं राजकुले जयां रणभुवि क्षेमंकरीमध्वनि
क्रव्याद द्विपसर्पभाजि शवरीं कान्तारदुर्गे गिरौ।
भूतप्रेतपिशाचजम्बुकभये स्मृत्वा महाभैरवीं
व्यामोहे त्रिपुरां तरन्ति विपदस्तारां च तोयप्लवे।।१७।।

(अन्वय पदच्छेद-सहित)

राजकुले लक्ष्मीम् इव, रण-भुवि जयाम् इव, अध्वनि क्षेमंकरीम् इव, क्रव्याद-द्विप-सर्प-भाजि-कान्तार-दुर्गे गिरौ शवरीम् इव, भूत-प्रेत-पिशाच-जम्बुक-भये महाभैरवीम् इव, व्योमोहे त्रिपुराम् इव (तथा) तोय-प्लवे ताराम् इव त्वां स्मृत्वा विपदः तरन्ति ।।१७।।

(अर्थ)

राज-कुल में साक्षात् 'लक्ष्मी' की भांति, भयंकर युद्ध-भूमि में जय-प्रदा 'विजया' की भांति, दुःख-ग्रस्त संसार में कल्याणस्वरूप वाली 'क्षेमंकरी' की भांति, आम-मांस-भक्षक सिंह तथा हाथी और सांप आदि भयंकर प्राणियों

से घिरे हुए कठिन दुर्गम जंगलों से युक्त पर्वतस्थानों में आप को रक्षा करने वाली 'भीलिनी' के समान, भूत, प्रेत, पिशाच और गीदड़ों के भय में 'महाभैरवी' के समान, सांसारिक मोह में 'त्रिपुरा' का स्वरूप बनी हुई और संकट रूपी विस्तृत जल से युक्त समुद्र में 'तारा' (नौका) के समान बनी हुई जो मनुष्य आप का स्मरण करते हैं, वे उपरोक्त सभी आपदाओं से छूट जाते हैं ।।१७।।

माया कुण्डालिनी क्रिया मधुमती काली कला मालिनी
मातंगी विजया जया भगवती देवी शिवा शांभवी।
शक्तिः शंकरवल्लभा त्रिनयना वाग्वादिनी भैरवी
ह्रींकारी त्रिपुरा परापरमयी माता कुमारीत्यसि ।।१८।।

(अन्वय पदच्छेद-सहित)

माया, कुण्डालिनी, मधुमती-क्रिया, काली, कला, मालिनी, मातंगी, विजया, जया, भगवती, देवी, शिवा, शांभवी-शक्तिः, शंकर-वल्लभा, त्रिनयना, वाग्वादिनी, भैरवी, ह्रींकारी, त्रिपुरा, परापरमयी, माता, कुमारी-इति (त्वम्) असि ।।१८।।

(अर्थ)

हे देवी! आप माया रूप हैं, कुण्डलिनी के स्वरूप वाली हैं, मधुमती नामक योगसंबंधी भूमिका हैं, (इस मधुमती भूमिका में जाकर योगियों के सम्मुख अपनी करणेश्वरी-देवियां वर देने के लिये उपस्थित हो जाती हैं) आप काली भगवती हैं, आप निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ता तथा शान्तातीता नामक पांच कलाओं का स्वरूप बनी हुई हैं, नकार वर्ण से लेकर फकार तक मालिनी-रूप हैं। दस महाविद्यालयों में से आप मातंगी-विद्या-स्वरूप हैं। आप विजया, जया, भगवती, देवी, पार्वती तथा शम्भु-पत्नी हैं। आप शक्ति-स्वरूप हैं। शंकर-भगवान् की प्रिया हैं। तीन नेत्रों वाली हैं। आप सरस्वती हैं। आप भैरव-नाथ की शक्ति हैं। आप ह्रींकार-रूपा हैं। तीन अवस्थाओं को पूर्ण करने वाली त्रिपुरा हैं। भोग तथा मोक्ष को देने वाली हैं। आप माता जगज्जननी हैं और भेदरूप माया का नाश करने वाली कुमारी हैं ।।१८।।

आईपल्लवितैः परस्परयुतैर्द्वित्रिक्रमाद्यक्षरैः
काद्यैः क्षान्तगतैः स्वरादिभिरथ क्षान्तैश्च तैः स्वरैः।
नामानि त्रिपुरे भवन्ति खलु यान्यत्यन्तगुह्यानि ते
तेभ्यो भैरवपत्नि विंशतिसहस्रेभ्यः परेभ्यो नमः ।।१९।।

(अन्वय पदच्छेद-सहित)

हे त्रिपुरे! हे भैरवपत्नि! आ-ई-पल्लवितैः परस्पर-युतैः द्वि-त्रि-क्रमादि--अक्षरैः, काद्यैः-क्षान्तगतैः अथ स्वरादिभिः सह क्षान्तैश्च तैः तैः स्वरैः (सह) यानि खलु अत्यन्त-गुह्यानि ते नामानि भवन्ति, तेभ्यः परेभ्यः विंशति- सहस्रेभ्यः नमः (अस्तु) ।।१९।।

(अर्थ)

हे तीनों लोकों को पूर्ण करने वाली देवी! हे भैरव-पत्नि! जो आप के अत्यन्त रहस्य बने हुए (बीजाक्षर) रूप में नाम हैं, वे आ, ई स्वरों रूपी पत्तों से युक्त हैं। दो, तीन वर्णों के क्रम से संयुक्त रूप वाले हैं। ककार से लेकर क्षकार अन्त वाले हैं। स्वरों से युक्त हैं अथवा स्वरों से युक्त क्षकार अन्त वाले हैं अर्थात्--अक्षहीं नफहीं वाले हैं। उन आप के अति उत्कृष्ट बीस हज़ार नामों को हमारा प्रणाम हो ।।१९।।

बोद्धव्या निपुणं बुधैः स्तुतिरियं कृत्वा मनस्तद्गतं
भारत्या त्रिपुरेत्यनन्य मनसा यत्राद्यवृत्ते स्फुटम्।
एकद्वित्रिपद क्रमेण कथितस्त्वत्पाद संख्याक्षरै
र्मन्त्रोद्धारविधिर्विशेष सहितः सत्संप्रदायान्वितः।।२०।।

(अन्वय पदच्छेद-सहित)

इयं भारत्या त्रिपुरा - इति - स्तुति तद्गतं मनः कृत्वा बुधैः निपुणं बोद्धव्या, यत्र आद्य - वृत्ते एक - द्वि - त्रिपदक्रमेण त्वत् - पाद - संख्या - अक्षरैः मन्त्र - उद्धार - विधिः विशेष - सहितः, सत्संप्रदाय - अन्वितः स्फुटं कथितः।।२०।।

(अर्थ)

सरस्वती भगवती की यह तीन अवस्थाओं को पूर्ण करने वाली त्रिपुरा नाम

वाली स्तुति, मन को एकाग्र बना कर तथा देवी की भक्ति में लीन होकर शिव - शक्तिपात से अनुगृहीत बने हुए विद्वानों को भली - भांति समझनी चाहिये। जहां इस स्तुति के प्रथम श्लोक में एक अर्थात् पहिले ऐं, दो अर्थात् दूसरे क्लीं, तीन अर्थात् तीसरे सौः— इन तीन पदों के क्रम से युक्त आप के चरणों के साथ संबन्ध रखने वाले बीजाक्षरों के द्वारा मन्त्रोद्धार की विधि बिशेष पूर्वक वर्णन की गई है, वहां यह स्तुति गुरु - जनों के सत्संप्रदाय से भी युक्त है अर्थात् गुरु - जनों के द्वारा ही इस स्तुति का प्रादुर्भाव हुआ है ।।२०।।

सावद्यं निरवद्यमस्तु यदि वा किं वानया चिन्तया
नूनं स्तोत्रमिदं पठिष्यति नरो यस्यास्ति भक्तिस्त्वयि।
संचिन्त्यापि लघुत्वमात्मनि दृढं सञ्जायमानं हठा
त्वदभक्त्या मुखरी कृतेन रचित यस्मान्मयापि ध्रुवम् ।।२१।।

(अन्वय पदच्छेद-सहित)

सा (इयं स्तुतिः) अवद्यम् अस्तु यदि वा निरवद्यम्। अनया चिन्तया किम्। यस्य त्वयि भक्तिः अस्ति, स नरः इदं स्तोत्रं नूनं पठिष्यति। यस्मात् आत्मनि संजायमानं दृढं लघुत्वं संचिन्त्य अपि त्वद् - भक्त्या - मुखरी - कृतेन मया अपि हठात् ध्रुवम् (इदं स्तोत्र) रचितम्।।२१।।

(अर्थ)

मेरी यह स्तुति सदोष है या निर्दोष है- इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। निश्चय रूप से जिस भक्त को आप की भक्ति होगी वह अवश्य इस स्तोत्र को पढ़ेगा। अपने हृदय में अपनी लघुता का पूर्ण रूप से ज्ञान होने पर भी मैं ने इस स्तुति की रचना केवल भक्त होने के नाते वाचाल बन कर हठ से अर्थात् भक्ति पर - वश होकर ही रची है ।।२१।।

(इति पञ्चस्तव्यां लघुस्तवः प्रथमः ।।१।।)

आचार्य पञ्चस्तवी के कर्ता ने अपने आप को अकिंचन समझ कर इस स्तव का नाम 'लघुस्तव' रखा है। अथवा यह भी हो सकता है कि जगन्माता की दया के फल-स्वरूप अत्यन्त कठिन और असाध्यतम् उस माता की स्तुति, सरल, स्पष्ट और लघु बन जाती है तभी तो इस स्तोत्र का नाम लघुस्तव रखा गया है ।।

'चर्चास्तवः द्वितीयः
ओं नमः— त्रिपुरसुन्दर्यै।

आनन्द सुन्दर पुरन्दर मुक्तमाल्यं
मौलौ हठेन निहितं महिषासुरस्य।
पादाम्बुजं भवतु मे विजयाय मञ्जु
मञ्जीर शिञ्जित मनोहरमम्बिकायाः।।१।।

(अन्वय पदच्छेद-सहित)

आनन्द - सुन्दर - पुरन्दर - मुक्त - माल्यं, महिषासुरस्य मौलौ हठेन निहितं (एवं) मञ्जीर - शिञ्जित - मनोहरम् अम्बिकायाः मञ्जु पादाम्बुजं मे विजयाय भवतु।।१।।

(अर्थ)

पांयज़ेब नुपुर की घनघनाहट के कारण मनोहारी, महिषासुर के सिर पर आग्रह - पूर्वक रखा गया और इसी कारण आनन्द से सुन्दर अर्थात् प्रसन्न बने हुए इन्द्र द्वारा उपहार की गई माला वाला माता दुर्गा जगञ्जननी का सुन्दर-चरण कमल मेरी विजय के लिये बना रहे।।१।। *

सौन्दर्य विभ्रम भुवो भुवनाधिपत्य
सम्पत्ति कल्पतरवस्त्रिपुरे जयन्ति।
एते कवित्वकुमद प्रकारव बोध
पूर्णेन्दवस्त्वयि जगज्जननि प्रणामाः।।२।।

प्रकारावबोध

* पौराणिक किंवदन्ती है कि महिषासुर नामक बलशाली दैत्य इन्द्र महाराज को बहुत सताया करता था। इस दु:ख से छुटकारा प्राप्त करने के लिए इन्द्र ने श्रीदुर्गाजी की शरण ली। भक्त के हितार्थ देवी दुर्गा सिंहारुढ़ बन कर महिषासुर के समीप आई तथा उस के सिर को अपने चरणों से ऐसा दबाया कि वह पाताल में जा पहुंचा। यह देखते ही इन्द्र हर्षित हुए और माता दुर्गा जी के चरणों पर शिर झुकाने लगे; ऐसा करते हुए उनकी मोतियों की माला दुर्गा के चरणों पर गिर पड़ी। इस श्लोक में इन्द्र संबन्धिनी मोतियों की माला से सुशोभित दुर्गा जी के उन्हीं चरणों के ध्यान की ओर संकेत है।

(अन्वय पदच्छेद-सहित)

त्रिपुरे! जगज्जननि ! एते त्वयि प्रणामाः सौन्दर्य विभ्रम - भुवः, भुवन - आधिपत्य - संपत्ति - कल्प - तरवः, कवित्व - कुमुद - प्रकर - अवबोध - पूर्ण - इन्दवः (च) सन्ति।।२।।

(अर्थ)

हे त्रिपुरा भगवती! हे जगन्माता! आप के निमित्त (भक्त - जनों के द्वारा)किये गये प्रणाम, अनन्त सुन्दरता के जन्म - दाता हैं। चक्रवर्ती - राज्य की संपत्ति को देने में कल्प - वृक्षों के समान हैं। ये प्रणाम, कविता रूपी कुमुद - कमलों के समूह को विकसित करने के लिए पूर्णिमा के चन्द्रमा के तुल्य हैं। भाव यह है कि जो जन आप को प्रणाम करते हैं उन्हें आन्तरिक तथा बाह्य - सुन्दरता जगन्माता प्रदान करती है। वे चक्रवर्ती राज्य को प्राप्त करके अनन्त समय के लिये ऐश्वर्य भोगते हैं तथा उन्हें कविता का प्रादुर्भाव धारावाहिक रूप से होने लगता है ।।२।।

देवि स्तुतिव्यतिकरेकृतबुद्धयस्ते
वाचस्पति प्रभृतयोऽपि जडी भवन्ति।
तस्मान्निसर्ग जडिमा कतमोऽहमत्र
स्तोत्रं तव त्रिपुरतापनपत्नि कर्तुम् ।।३।।

(अन्वय पदच्छेद-सहित)

हे देवि! ते स्तुति - व्यतिकरे कृतबुद्धयः वाचस्पति प्रभृतयः अपि जडी भवन्ति। तस्मात् हे त्रिपुरतापन पत्नि! निसर्ग - जडिमा अहम् अत्र तव स्तोत्रं कर्तुं कतमः (अस्मि)।।३।।

(अर्थ)

हे देवि! आप के स्तुति - रचनात्मक परिश्रम करने में बुद्धि - पारंगत बने हुए बृहस्पतिपाद आदि विद्वान् भी मूक बन जाते हैं, अर्थात् आप की स्तुति नहीं कर सकते हैं। इसलिए हे त्रिपुरारि शंकर की महारानी! स्वभाव से ही जड़ अर्थात् मूर्ख मैं, आप की स्तुति करने में गिनती ही क्या रखता हूं।।३।।

मातस्तथापि भवतीं भवतीव्रताप
विच्छित्तये स्तुति महार्णव कर्णधारः।
स्तोतुं भवानि स भवच्चरणारबिन्द
भक्तिग्रहः किमपि मां मुखरी करोति।।४।।

(अन्वय पदच्छेद-सहित)

हे माता! हे भवानि! तथापि भवतीव्रतापविच्छित्तये स्तुति - महार्णव - कर्णधारः स किमपि भवच्चरणारबिन्दभक्तिग्रहः भवती स्तोतुं मां मुखरी करोति।।४।।

(अर्थ)

हे माता! हे भवानी! (यद्यपि मैं आप की स्तुति करने में असमर्थ हूं) क्योंकि आप की स्तुति एक अथाह समुद्र के तुल्य है और इस के पार होना मनुष्य के पूरुषार्थ से बाहर है, तथापि आप के चरण - कमलों की अलौकिक भक्ति ही इस उपरोक्त स्तुति - रचनात्मक समुद्र में एक प्रवीण नाविक के समान सहायक है। वही भक्ति सांसारिक दुःखों को हटाने के निमित्त मुझे आप की स्तुति करवाने में मुखर अर्थात् वाचाल बना देती है।

सूते जगन्ति भवती भवती बिभर्ति
जागर्ति तत्क्षयकृते भवती भवानि।
मोहं भिनत्ति भवती भवती रुणद्धि
लीलायितं जयति चित्रमिदं भवत्याः।। ५।।

(अन्वय)

हे भवानि! भवती जगन्ति सूते, भवती बिभर्ति, तत्क्षयकृते भवती जागर्ति। भवती मोहं भिनत्ति, भवती रुणद्धि।(इत्यतः) इदं भवत्याः चित्रम् लीलायितं जयति।।५।।

(अर्थ)

हे माता! आप इन सभी सांसारिक मण्डलों की उत्पत्ति करती हैं; इन का

पालन पोषण करती हैं और इन का नाश करने के लिए हुश्यार अर्थात सन्नद्ध बनी रहती हैं। इस के अतिरिक्त आप तिरोधानात्मक एवं अज्ञान रूपी मोह को काटती हैं तथा उस मोह को फिर से (आश्यानीभावात्मक) स्थिति देती हैं, अतः आप की इस विचित्र लीलामय क्रीड़ा की जय हो ।।५।।

यस्मिन्मनागपि नवाम्बुज पत्र गौरि!
गौरि! प्रसादमधुरां दृशमादधासि।
तस्मिन्निरतरमनङ्ग शरावकीर्ण
सीमन्तिनी नयन सन्ततयः पतन्ति।।६।।

(अन्वय)

हे नवाम्बुज पत्र गौरि! यस्मिन् प्रसाद - मधुरां दृशं मनागपि (त्वं) आदधासि, तस्मिन् अनङ्ग - शरअवकीर्ण - सीमन्तिनी - नयन - सन्ततयः निरन्तरं पतन्ति।।६।।

(अर्थ)

नवीन कमलों के पत्तों के समान श्वेत - वर्ण वाली हे पार्वती! दया से मधुर बनी हुई अपनी दृष्टि आप जिस भक्त पर तनिक मात्र भी डालती हैं उस की ओर दया-पूर्ण दृष्टि से देखती हैं, उस भक्त का मानसिक संकल्प विकल्पों से छलनी बना हुआ मन तथा मन की वृत्तियों की पंक्ति सदा के लिए स्वयं अर्थात् बिना किसी प्रयास के निश्चेष्ट हो जाती हैं अर्थात् वह एकाग्र बन कर समाधि - निष्ठ बनता है।।६।।

पृथ्वी भुजोऽप्युदयनप्रवरस्य तस्य
विद्याधर प्रणति चुम्बित पाद पीठः।
यच्चक्रवर्ति पदवी प्रणयः स एव
त्वत्पाद पङ्कजरजः कणजः प्रसादः ।।७।।

(अन्वय)

तस्यापि उदयन प्रवरस्य पृथ्वीभुजः यत् विद्याधर प्रणति चुम्बित पाद पीठः चक्रवर्ति पदवी प्रणयः (अभवत्) स एव प्रसादः त्वत्पाद - पंकज रजः कणजः (तस्य आसीत्)।।७।।

(अर्थ)

उस श्रेष्ठ राजा उदयन को, जो चक्रवर्ती - पदवी की बढ़ाई प्राप्त हुई थी तथा जिस के राज्य - सिंहासन के पाद - पीठ को प्रणाम करके और चूम कर विद्याधर गण अपना अहोभाग्य समझते थे। (इस भाँति उस के संपूर्ण ऐश्वर्य का होना) आप के ही चरण कमलों की धूलि के एक कण - मात्र की दया थी।।७।।

कल्पद्रुम प्रसव कल्पित चित्र पूजा
मुद्दीपित प्रियतमामदरक्तगीतिम्।
नित्यं भवानि भवतीमुपवीणयन्ति
विद्याधराःकनकशैलगुहागृहेषु ।।८।।

(अन्वय)

हे भवानि! विद्याधराः कल्प - द्रुम - प्रसव - कल्पित चित्र - पूजां भवतीम् कनक - शैल - गुहा - गृहेषु उद्दीपित - प्रियतम - आमद --रक्त--गीतिं नित्यम् उपवीणयन्ति।।८।।

(अर्थ)

हे पार्वती! विद्याधर - गण कल्प वृक्षों के पुष्पों से आप की अनूठी पूजा करके सुवर्ण - मय सुमेरु पर्वत की कन्दराओं में अत्यन्त ज्वाज्वल्यमानु, तथा अपने प्रिय हर्ष - युक्त गीतों को सदैव वीणाओं पर बजाते रहते हैं तथा आप के गुणों का गान करते हैं।।८।।

लक्ष्मीवशीकरणकर्मणिकामिनीना
माकर्षणव्यतिकरेषु च सिद्ध मन्त्रः।
नीरन्ध्र मोह तिमिरच्छिदुर प्रदीपो
देवि त्वदंघ्रिजनितो जयति प्रसादः।।९।।

(अन्वय)

हे देवि! त्वद् अंघ्रि जनितः प्रसादः, लक्ष्मी वशीकर्मणिः तथा नीरन्ध्र - मोह- तिमिर-च्छिदुर - प्रदीपः जयति ।।९।।

(अर्थ)

हे देवि! आप के चरणों से उत्पन्न अनुग्रह,अनन्त संपदाओं को वशीभूत करने में तथा कामिनियों अर्थात् अद्वैत - प्रधान अष्ट - सिद्धियों को अपने स्वाधीन बनाने में सिद्ध राम - बाण की भांति अचूक मन्त्र है एवं घने अज्ञान रूपी अन्धकार को छिन्न - भिन्न करने में दीपक के समान है। उसी आप की दया की जय हो।।९।।

देवि त्वदंघ्रिनखरत्नभुवो मयूखाः
प्रत्यग्रमौक्तिकरुचो मुदमुद्वहन्ति।
सेवानतिव्यतिकरे सुरसुन्दरीणां
सीमन्त सीम्निकुसुमस्तवकायितं यैः ।।१०।।

(अन्वय)

हे देवि! त्वद् अंघ्रि-नख-रत्न-भुवः प्रत्यग्र-मौक्तिक-रुचः मयूखाः मुदम् उद्वहन्ति, यैः (मयूखैः) सुरसुन्दरीणां सीमन्त-सीम्नि सेवा-नति-व्यतिकरे कुसुम-स्तवकायितम् ।।१०।।

(अर्थ)

हे देवी! आप के चरणों के नाखून रूपी रत्नों से उत्पन्न सौन्दर्य की किरणें प्रत्येक नाखून के अग्रभाग पर मोती की कांति के समान चमक से आनन्द को प्राप्त करती हैं, तथा वे किरणें सेवा के कारण नत - मस्तक रहने वाली देवस्त्रियों के मांग के स्थान में गुलदस्ते की भांति आभा से युक्त दिखाई देती हैं।।१०।।

मूर्ध्नि स्फुरत्तुहिनदीधितिदीप्तिदीप्तं
मध्ये ललाटममरायुधरश्मिचित्रम्।
हृच्चक्र चुम्बिहुत भुक्कणिकानु रूपं
ज्योतिर्यदेतदिदमम्ब तव स्वरूपम्।।११।।

(अन्वय)

अम्ब! मूर्ध्नि स्फुरत् तुहिन दीधिति दीप्तिदीप्तं, मध्ये ललाटम् अमरायुध रश्मि चित्र, (तथा) हृच्चक्र चुम्बि हुतभुक् - कणिका अनुरूपं यत् एतत् ज्योतिः (वर्तते) तत् तव स्वरूपम (अस्ति)।

(अर्थ)

हे माता! समस्त प्राणियों के ब्रह्मांड-स्थान में जो ज्योति चन्द्रमा की किरणों की कांति के समान विकसित बनी हुई है, तथा प्राणियों के मस्तक के बीच में इन्द्र - धनुष की नाई रंग - बिरंगी अनेक रश्मियों से युक्त जो प्रकाश ठहरा रहता है, एवं प्राणियों के हृदय - स्थान में ठहरी हुई अग्नि के कणों की भांति जो ज्योति अवस्थित है, वे सभी प्रकाश, वास्तव में आपके ही स्वरूप हैं। भाव यह है कि 'ऐ, क्लीं, सौः' — ये आप के बीजाक्षर आप के स्वरूप को ही दिखाते हैं।।११।।

रूपं तव स्फुरितचन्द्रमरीचिगौर-
मालोकते शिरसि वागधिदैवतं यः।
निः सीमसूक्तिरचनामृतनिर्भरस्य
तस्य प्रसादधुराः प्रसरन्ति वाचः।।१२।।

(अन्वय)

यः (काश्चित्) स्फुरित - चन्द्र मरीचि - गौरम् तव रूपं वागधिदैवतं शिरसि आलोकते, निः सीमसूक्ति रचनामृत निर्भरस्य तस्य प्रसाद मधुराः वाचः प्रसरिन्त ।।१२।।

(अर्थ)

जो भक्त, सरस्वती के मुख्य बने हुए (क्लीं) नामक आप के मन्त्र-स्वरूप को विकसित चन्द्रमा की किरणों की भांति श्वेतता से युक्त शिर पर ध्यान करता है, उस भक्त को सीमा - रहित सुन्दर उक्ति रूपी रचनामृत के प्रवाह से युक्त आप की कृपा के फल - स्वरूप मधुर आकर्षक कवित्वमय वाणी प्रकट होती है ।।१२।।

सिन्दूरपांसुपटलच्छुरितामिव द्यां
त्वत्तेजसा जतुरसस्नापितामिवोर्वीम्।
यः पश्यति क्षणमपि त्रिपुरे विहाय
व्रीडां मृडानि सुदृशस्तमनुद्रवन्ति ।।१३।।

(अन्वय)

यः त्वत्तेजसा सिन्दूर - पांसु - पटल - छुरिताम् इव द्यां (तथा)जतु - रस - स्नापिताम् इव ऊर्वीम् क्षणम् अपि पश्यति, हे त्रिपुरे! तं सुदृशः व्रीडां विहाय अनुद्रवन्ति।।१३।।

(अर्थ)

हे त्रिपुरा देवि! जो भक्त आप के तेज से आकाश को सिन्दूर के रंग से रंगे हुए तथा लाक्ष - रस से लाल बनी हुई पृथ्वी को क्षणमात्र के लिए भी ध्यान करके देखता है, उसे इन्द्रिय - वृत्तियां लज्जा को त्याग कर अर्थात् बिना किसी रुकावट से पीछे पीछे दौड़ती हैं अर्थात् पूर्ण रूप से स्ववशवर्ती बन जाती है।।१३।।

मातर्मुहूर्तमपि यः स्मरति स्वरूपं
लाक्षारस प्रसरतन्तुनिभं भवत्याः।
ध्यायन्त्यनन्य मनसस्तमनङ्गतप्ताः
प्रद्युम्नसीम्नि सुभगत्वगुणं तरुण्यः ।।१४।।

(अन्वय)

मातः! यः भवत्याः स्वरूपं लाक्षा - रस प्रसर - तन्तुनिभं मुहूर्तमपि स्मरति, तं अनङ्गतप्ताः तरुण्यः प्रद्युम्न सीम्नि सुभगत्वगुणं अनन्य मनसः ध्यायन्ति ।।

(अर्थ)

माता! जो भक्त एक मुहूर्त के लिए भी आप के स्वरूप का ध्यान, प्रसारित हुए लाक्षारस के समान करता है; अर्थात् आप के स्वरूप का ध्यान परिपूर्ण प्रकाशरूपता से संयुक्त बना हुआ करता है, उसे कामदेव से पीडित बनी हुई युवतियां, अर्थात् मानसिक संकल्प - विकल्पों से संक्षुभित बनी हुई इन्द्रियां अपनी चञ्चलता को छोड़ कर कामदेव की नाईं अत्यन्त सुन्दर मान कर एकाग्रता से ध्यान करती हैं, अर्थात् - उस की सभी इन्द्रियां सदा के लिए उसके वशवर्ती बन जाती हैं।।१४।।

योऽयं चकास्ति गगनार्णवरत्नमिन्दु
र्योऽयं सुरासुरगुरुः पुरुषः पुराणः।
यद्वाममर्धमिद मन्धकसूदनस्य
देवि! त्वमेव तदिति प्रतिपादयन्ति।।१५।।

(अन्वय)

हे देवि! योऽयं गगनार्णवरत्नमिन्दुः चकास्ति, योऽयं सुरासुरगुरुः पुराणः पुरुष (अस्ति), यत् (च) इदं अन्धकसूदनस्य वामम् अर्धम् अस्ति। 'तत् त्रितयं त्वमेव' – इति (ज्ञानिनः) प्रतिपादयन्ति ।।१५।।

(अर्थ)

हे देवि! आकाश रूपी समुद्र का रत्न बना हुआ जो यह चन्द्रमा चमक रहा है, जो यह देवताओं तथा असुरों के गुरु पुरातन पुरुष भगवान् नारायण हैं और जो अन्धकासुर राक्षस को मारने वाले महादेव जी की सुन्दर (अर्धाङ्गिनी) पार्वती जी हैं। "ये सभी तीनों आप का ही स्वरूप हैं" – इस प्रकार ज्ञानी जन सिद्ध करते हैं।।१५।।

इच्छानुरूपमनुरूपगुण प्रकर्षं
संकर्षिणि! त्वमनुसृत्य यदा बिभर्षि।
जायेत स त्रिभुवनैक गुरुस्तदानीं
देवः शिवोऽपि भुवनत्रयसूत्रधारः।।१६

(अन्वय)

हे संकर्षिणि, यदा त्वं (तं शिवं) इच्छानुरूप - अनुरूप - गुण - प्रकर्षं अभिमृष्य बिभर्षि, तदानीम् (एव) स शिवः अपि त्रिभुवन - एक - गुरुः भुवन - त्रय - सूत्र धारः देवः जायेत।।१६।।

(अर्थ)

हे शिव को अपनी ओर आकर्षित करने वाली देवी ! जब आप शिव को अपनी इच्छा के अनुरूप अपने उत्कृष्ट - गुणों के सदृश परामर्श के बल से

बनाती हैं तो उसी समय वह भगवान् शिव भी तीन भुवनों का गुरु तथा तीन भुवनों के सृजन और संहार करने में समर्थ सूत्रधार अर्थात् त्रिभुवन - नाटक रचाने में समर्थ बन जाता है।।१६।।*

रुद्राणि! विद्रुममयीं प्रतिमामिव त्वां
ये चिन्तयन्त्यरुण कान्तिमनन्यरूपाम्।
तानेत्य पक्ष्मलदृशः प्रसभं भजन्ते
कण्ठा वसक्तमृदुबाहुलतास्तरूण्यः।।१७।।**

(अन्वय)

हे रुद्राणि! ये त्वाम् अनन्यरूपाम् अरुणकांति विद्रुममयीम् इव प्रतिमां चिन्तयन्ति, पक्ष्मलदृशः साधक - कण्ठ - अवसक्तमृदुबाहुलताः तरुण्यः तान् (साधकान्) एत्य प्रसभं भजन्ते।।१७।।

(अर्थ)

हे रुद्राणि! जो भक्त 'विद्रुम' नामक मनके की भांति लाल रंग से युक्त बनी हुई एवं अनुपम प्रतिमा बनी हुई आप के स्वरूप का ध्यान करते हैं, ऐसे उपासकों के पास जाकर, उनके कण्ठ अर्थात् ग्रीवा में लगाये हुए कोमल बाहुलताओं वाली सुन्दर नेत्रों वाली युवतियां निःसंकोच होकर आलिंगन करती हैं।।१७।।

---

* अथवा जिस किसी व्यक्ति में आप अपनी अनुग्रह मयी इच्छा से अपनी शांभव - शक्ति का सञ्चार करती हैं, वह भी भगवान् शंकर के सदृश त्रिलोकनाथ तथा जगत की लीला रचाने में समर्थ सूत्रधार बन जाता हैं।।१६।।

** इस श्लोक में 'पक्ष्मल दृशः' शब्द में आध्यात्मिक दृष्टि से प्राणापान के अवधान की ओर संकेत है, 'कण्ठाव सक्त' शब्द में लम्बिका चतष्पथ की और संकेत है, 'बाहुलता' शब्द में चिन्प्रकाशमय प्रकाश और विमर्श की ओर संकेत है तथा 'तरुण्यः' शब्द में अन्तः प्रमातृपद में ठहरी हुई करणेश्वरी-वर्ग की ओर संकेत है। भाव यह है कि साधक जब पूर्ण-प्रकाश-मयी परापारमेश्वरी का अनुसन्धान करता है तो फिर उस साधक की इन्द्रिय - वृत्तियां अन्तर्मुख होकर उस साधक के प्राणापान को लम्बिका चतुष्पथ पर ले जाती हैं और फिर वह साधक उस शक्ति चक्र के बाहुपाश में आकर पूर्णरूप से स्वरूप निष्ठ बनता है।

त्वद्रूपमुल्लसितदाडिम पुष्परक्त
मुद्भावयेन्मदन दैवतमक्षरं यः।
रूपहीनमपिमन्मथमिर्विशेष
मालोकयन्त्युरुनितम्बतटास्तरुण्यः।।१८।।*

(अन्वय)

'हे मातः' यः उल्लसित - दाडिम - पुष्प रक्तम् मदन - दैवतम् अक्षरं त्वद्रूपम् उद्भावयेत्, रूपहीनमपि तं उरु - नितम्ब - तटाः - तरुण्यः मन्मथनिर्विशेषम् आलोकयन्ति।।१८।।

(अर्थ)

हे जगन्माता! जो साधक प्रफुल्लित अनार के फूल की तरह लालिमा से युक्त एवं अविनश्वर कामराजबीजमय आप के स्वरूप को स्वात्माभेदरूपता से ध्यान करता है, ऐसा साधक लावण्य तथा रूप से रहित भी हो तथापि बड़े-बड़े सुन्दर कटितटों वाली युवतियां उसे मन्मथ अर्थात् कामदेव के समान ही अत्यन्त सुन्दर समझती हैं इस प्रकार उसे बडे प्रेम से अपनाती हैं।।१८।।

ध्यातासि हे भवति! येन हिमांशु रश्मि
मालामलद्युतिरकल्मष मानसेन।
तस्याविलम्बमन वद्यमनन्त कल्प
मल्पैर्दिनैः सृजसि सुन्दरि! वाग्विलासम्।।१९।।

---

* इस श्लोक में आध्यात्मिक दृष्टि से (रूपहीनमपि) शब्द में मित प्रमातृ दशा के त्यागने की ओर संकेत है, (मन्मथ निर्विशेषम्) शब्द में मन्थान - भैरव - समापत्ति की ओर संकेत है और (उरुनितम्बतटाः) शब्द में स्वरूप समावेशपूर्ण ज्ञान क्रिया की ओर संकेत है। भाव यह है कि साधक जब अत्यन्तप्रकाश पूर्ण तथा स्वातन्त्र्यपूर्ण परापारमेश्वरी का अनुसंधान करता है तो फिर उस साधक की मितप्रमातृ दशा नष्ट हो जाती है और वह पर प्रमातृ भाव में समाविष्ट होता है, उस के फल - स्वरूप वह साधक पूर्ण ज्ञान क्रिया शक्ति से युक्त होकर मन्थान भैरव - समापत्ति (अर्थात् विकास - समाधि) को प्राप्त करता है।

(अन्वय)

हैमवति! हिमांशु - रश्मि - माला - अमल - द्युतिः (त्वं) येन अकल्मष मानसेन ध्याता असि, हे सुन्दरि! तस्य अविलम्बम् अनवद्यम् अनन्तकल्पम् वाग्विलासम् अल्पैः दिनैः (त्वं) सृजसि।।१९।।

(अर्थ)

हे हिमालय की पुत्री! हे सुन्दरी! जिस भक्त ने चन्द्रमा की किरणावलि की भांति निर्मल प्रकाश से युक्त आप के स्वरूप का ध्यान निष्पाप मन से अर्थात् निर्विकल्प मन से किया हो, उसे आप थोडे ही दिनों में कविता का प्रसर सृजन करती हैं, जो कविता का प्रसर श्रुति - कटु इत्यादि दोषों से रहित तथा प्रसाद आदि गुणों से संपन्न एवं अस्खलित और धारावाहिक रूप से प्रसरणशील होता है।।१९।।*

आधार मारुत निरोधवशेन येषां
सिन्दुररञ्जितसरोजगुणानुकारि।
दीप्तं हृदि स्फुरति देवि वपुस्त्वदीयं
ध्यायन्ति तानिह समीहित सिद्ध साध्याः।।२०।।

(अन्वय)

हे देवि! आधार - मारुत - निरोध - वशेन सिन्दूर - रञ्जित सरोज - गुण - अनुकारि त्वदीयं दीप्तं वपुः येषां हृदि स्फुरति तान् इह समीहित - सिद्ध - साध्याः ध्यायन्ति।।२०।।

(अर्थ)

हे देवी! मूलाधार - चक्र में प्राणापान रूपी वायु के सुषुम्ना मार्ग में लय करने के फल - स्वरूप जिन भक्तों के हृदय में सिन्दूर से रंगे हुए कमल - पुष्प के समान अत्यन्त प्रकाशमान् आप का स्वरूप विकसित होता है उन भक्तों की अभीष्ट प्राप्ति के लिए सिद्ध - पुरुष तथा साध्य - देवता (सदैव) ध्यान करते रहते हैं, अर्थात् उन - भक्तों को बरदान देने में तत्पर बने रहते हैं।।२०।।

---

* परा पारमेश्वरी की अनुग्रहमयी लीला दिखाते हुए तंत्रालोक में कहा भी है —

'कवित्वं पञ्चमं ज्ञेयं सालंकारं मनोहरम्'। अर्थात् परा संविति देवी के अनुग्रह - शक्ति का पाञ्चवां लक्षण कवित्व - शक्ति की प्राप्ति है, जो कविता मनोहर, सुन्दर तथा दोषरहित होती है।।

त्वामैन्दवीमिव कला मनुभालदेश
मुद्भासिताम्बर तलामवलोकयन्तः।
सद्यो भवानि सुधियः कवयो भवन्ति
त्वं भावनाहितधियां कुलकामधेनुः।।२१।।

(अन्वय)

हे भवानि! उद्भासित - अम्बरतलाम् ऐन्दवीम् इव कलां त्वाम् अनुभालदेशम् अवलोकयन्तः सुधियः सद्यः कवयः भवन्ति। त्वं (हि) भावना - आहित - धियां कुलकामधेनुः (भवसि)।।२१।।

(अर्थ)

हे जगन्माता! चिदाकाश - स्वरूप को उत्तेजित करने वाली चन्द्र - कला के सदृश आप के स्वरूप का जो अपने मस्तक के स्थान पर साक्षात्कार करते हैं, वे साक्षात्कार करने के अनन्तर ही कवित्व - शक्ति - संपन्न अर्थात् सर्वज्ञ आदि गुणों से संयुक्त बनते हैं, यतः समाधि में आरूढ प्रज्ञा वालों के लिए आप ही समस्त कामनाओं को देनें में समर्थ हैं।।२१।।

त्वां व्यापिनीति समना इति कुण्डलीति
त्वां कामिनीति कमलेति कलावतीति।
त्वां मालिनीति ललितेत्यपराजितेति
देवि! स्तुवन्ति विजयेति जयेत्युमेति।।२२।। *

(अन्वय)

हे देवि! (सद्भक्ताः) त्वां व्यापिनीति, समना इति, कुण्डलीति (स्तुवन्ति), त्वां कामिनीति, कमलेति, कलावतीति (स्तुवन्ति), त्वां (च) मालिनीति, ललितेति, अपराजितेति, विजयेति, जयेति, उमेति स्तुवन्ति।।२२।।

---

* शिव - प्रणव की दसवीं मात्रा को 'व्यापिनी' कहते हैं और ग्यारहवीं मात्रा को 'समना' का नामकरण दिया गया है। 'कुण्डली' शब्द में यहां ऊर्ध्वकण्डलिनी - धाम की ओर संकेत है। 'कामिनी' शब्द में समस्त कामनाओं को देने वाली कामेश्वरी भगवती का संकेत है। जिस शक्ति ने अपने जन्म से दक्षप्रजापति को शोभित किया था उस शक्ति को कमला कहते हैं। 'कलावती' शब्द में भैरवनाथ की स्वातन्त्र्यशक्ति की ओर संकेत है। त्रिकसंप्रदाय में णकार से फकार तक वर्ण माला देवी 'मालिनी' कही जाती है। चिदानन्दरसपूर्ण होने से पारमेश्वरी शक्ति ललिता कही जाती है। शेष अपराजिता, विजया, जया तथा उमा – ये चार देवी के नाम सुगम ही हैं।।२२।।

(अर्थ)

हे देवि! आप व्यापिनी - शक्ति हैं, समना हैं, कुण्डलिनी - भगवती हैं, आप कामिनी अर्थात् कामेश्वरी रूपा हैं, आप लक्ष्मी हैं तथा स्वातन्त्र्य - शक्ति हैं आप मालिनी, ललिता, अपराजिता, विजया, जया और उमा हैं — इस प्रकार सदभक्त आप की स्तुति करते हैं।।२२।।

ये चिन्तयन्त्यरुण मण्डल मध्यवर्ति
रूपं तवाम्ब! नवयावकपङ्कपिङ्गम्।
तेषां सदैव कुसुमायुधबाण भिन्न
वक्षः स्थला मृगदृशो वशगा भवन्ति।।२३।।

(अन्वय)

हे अम्ब! ये अरुण - मण्डल - मध्य - वर्ति तव रूपं नव - यावक - पङ्क-पिङ्गं चिन्तयन्ति, कुसुमायुध - बाण - भिन्न वक्षः स्थलाः मृगदृशः तेषां वशगा सदैव भवन्ति।।२३।।

(अर्थ)

हे माता! जो भक्त सूर्य - मण्डल में ठहरे हुए तथा नवीन लाक्षा - रस के समान लालिमा से युक्त आप के स्वरूप का ध्यान करते हैं, उन्हें काम - देव के बाणों से विद्ध - हृदय वाली सुन्दर युवतियां सदा के लिए वश - वर्त्ती बनती हैं।।२३।।*

उत्तप्तहेमरुचिरे त्रिपुरे! पुनीहि
चेतश्चिरन्त नमघौघवनं लुनीहि।
कारागृहे निगडबन्धनपीडितस्य
त्वत्संस्मृतौ झटिति मे निगडास्त्रुटन्तु।।२४।।

---

* इस श्लोक में 'अरुण-मण्डल शब्द में प्राणार्ककुण्डलिनी की ओर संकेत है, 'पिङ्' शब्द में महा प्रकाशरूपता की ओर संकेत है। भाव यह है कि पारमर्थिक दृष्टि से पारमेश्वरी शक्ति — महा प्रकाश संपन्ना प्राणार्क कुण्डलिनी ही कही जाती है। 'कामदेव' शब्द में इच्छा - स्वातंत्र्य की ओर संकेत है। भाव यह है कि पारमेश्वरी त्रिपुर सुन्दरी का साक्षात्कार करने पर साधक की सभी इन्द्रियां परिपूर्ण - इच्छा - स्वातंत्र्य से बिंधी जाती हैं और उस के फल - स्वरूप वे इन्द्रियां अपनी विषय - वृत्तियों को तिलाञ्जलि देकर सदा के लिए परिपूर्ण इच्छा - स्वातन्त्र्य में तल्लीन हो जाती हैं।२३।

(अन्वय)

हे उत्तप्तहेमरूचिरे! हे त्रिपुरे ! (मम) चेतः मानसं पुनीहि। चिरन्तनम् अघौघवनं लुनीहि। कारागृहे निगडबन्धन - पीडितस्य मे त्वत्संस्मृतौ निगडाः झटिति त्रुटन्तु।।२४।।

(अर्थ)

हे तपाये हुए स्वर्ण की भांति (जाज्वल्यमान्) दीप्ति वाली देवी! मेरे मन को पवित्र कीजिये अर्थात् आप अपनी उपासना करने के योग्य बना दीजिए। अनन्त काल से उपार्जित मेरे विषयवासनात्मक पाप रूपी जंगल काट दीजिए। इस के अतिरिक्त संसार रूपी बन्दी गृह (जेलखाने) में फंसे हुए और इसीलिए विशेष पूर्वक (अहंममात्मक जञ्जीरों से झकडे हुए मुझ को आप का सम्यक् ध्यान करने से ये सभी बन्धन कट जायें और मैं पारमार्थिक मोक्ष - धाम को प्राप्त करूं।।२४।।

शर्वाणि! सर्वजनवन्दित पादपद्मे!
पद्मच्छदच्छविविडम्बितनेत्रलक्ष्मि!।
निष्पापमूर्ति जनमानसराज हंसि!
हंसि त्वमापदमनेकविधां जनस्य।।२५।।

(अन्वय)

हे शर्वाणि! हे सर्वजनवन्दित पाद पद्मे! हे पद्मच्छदच्छवि विडाम्बितनेत्रलक्ष्मि! हे निष्पाप मूर्ति जनमानसराजहंसि!त्वम् अनेक विधाम् आपदं जनस्य हंसि।।२५।।

(अर्थ)

हे अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट करने वाली! जन्म - मृत्यु से पीडित सभी प्राणियों के द्वारा वन्दन की गई चरण - कमलों वाली हे देवि! हे कमल - पत्रों की शोभा के समान नेत्रों की कान्ति से युक्त बनी हुई माता! हे संकल्प - विकल्प - रूपी मालिन्य से रहित करने वाली राजहंसिनी! आप अपने भक्तों पर आई हुई आपदाओं को नष्ट करती हैं, अतः मेरी आपदाओं का भी नाश कीजिए ।।२५।।

त्वत्पाद पंकजरज: प्रणिपात पूतैः
पुण्यैर नल्पमतिभि: कृतिभि: कवीन्द्रैः।
क्षीर क्षपा कर दुकूल हिमावदाता
कैरप्यवापि भुवनत्रियतेऽपि कीर्तिः ।।२६।।

(अन्वय)

त्वत्पादपंकजरज: प्रणिपात पूतैः पुण्यैः अनल्पमतिभिः कृतिभिः कैरपि कवीन्द्रैः भुवनत्रितये अपि क्षीर - क्षपाकर - दुकूल - हिम अवदाता कीर्तिः अवापि।।२६।।

(अर्थ)

हे देवी! आप के चरण - कमलों की धूलि को प्रणाम करने के फल - स्वरूप पवित्र बने हुए, पुण्यात्मा, प्रकांड विद्वान, कृतकृत्य किन्हीं अलौकिक महान् कवियों ने तीनों लोकों में ऐसी त्रिलोक - व्यापि कीर्ति को प्राप्त किया होता है, जो दूध, चन्द्रमा, रेशमी वस्त्र तथा बर्फ के समान श्वेत अर्थात् - कलंक - रहित होती है।।२६।।*

त्वद्रूपैकनिरूपण प्रणयिताबन्धो दृशोस्त्वद गुण
ग्रामाकर्ण नरागिता श्रवणयोस्त्वत्संस्मृतिश्चेतसि।
त्वत्पादार्चनचातुरी करयुगे त्वत्कीर्तनं वाचि मे
कुत्रापि त्वदुपासनव्य सनिता मे देवि!मा शाम्यतु ।।२७।।

(अन्वय)

देवि! मे दृशो: त्वद्रूप - एक - निरूपण - प्रणयिता - बन्धः (भूयात्), मे श्रवणयोः त्वद्गुण- अर्चन - चातुरी (भवतु), (एवं)मे वाचि त्वत्कीर्तनं (भूयात्) (इत्येवं) मे त्वदुपासन - व्यसनिता कुत्रापि मा शाम्यतु।।२७।।

---

* भाव यह है कि आप की भक्ति करने वाले भक्त - जन आप के स्वरूप में समावेश प्राप्त करने से अनुपम विश्व - व्यापि कीर्ति प्राप्त करते हैं। २६।

(अर्थ)

हे देवी! मेरे नेत्रों में केवल - मात्र आप के रूप का निर्णय करने का चाव बना रहे। मेरे कानों में आप के गुणानुवाद सुनने में ही राग अहर्निश प्राप्त हो। मेरे मन में केवल आप का ही स्मरण बना रहे। मेरे दोनों हाथों में आप के चरणों की पूजा करने की चतुरता प्राप्त हो जाये और मेरी वाणी आप की गुण-कीर्तना ही करती रहे। इस रीति से मेरी इन्द्रियों को इस आप की उपासना करने की टेंव (आदत) कभी भी कम न हो अर्थात् सदा बनी रहे। भाव यह है कि मैं अपने समस्त जीवन-काल में आप की पूजा के अतिरिक्त अन्य कोई भी व्यवहार न करूं।।२७।।

उद्दामकाम परमार्थ सरोजषण्ड-
चण्डद्युतिर्द्युतिमुपासितषट् प्रकाराम्।
मोहद्विपेन्द्र कदनोद्यतबोधसिंह-
लीलागुहां भगवतीं त्रिपुरां नमामि ।।२८।।

(अन्वय)

(अहम्) उद्दाम-काम-परमार्थ-सरोज-षण्ड-चण्ड-द्युतिद्युतिम् उपासित-षट-प्रकारां मोह-द्विपेन्द्र-कदन-उद्यत-बोधसिंह- लीला-गुहां भगवतीं त्रिपुरां नमामि ।।२८।।

(अर्थ)

कुण्डलिनी स्वरूपा त्रिपुरादेवी जब षट्चक्रों के भेदन करने के क्रम से उपासना की जाती है तो फिर वह त्रिपुरादेवी परिपूर्ण इच्छा-स्वातन्त्र्य के पारमार्थिक षट्चक्रसंबन्धी कमलों के समूह की चमक से चमचमाती हुई प्रकट होती हैं। तदनन्तर ही वह जगन्माता मोह रूपी मद-मस्त हाथी को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए मानो उद्यत भैरवीय चित्प्रकाश रूपी सिंह का विलासस्थान प्रकट करती है—ऐसी ही कुण्डलिनी रूप महात्रिपुरसुन्दरी को मैं प्रणाम करता हूँ ।।२८।।

गणेशवटुकस्तुता रतिसहायकामान्विता
स्मरारिवरविष्टरा कुसुमबाणबाणैर्युता।
अनङ्गकुसुमादिभिः परिवृता च सिद्धैस्त्रिभिः
कदम्बवनमध्यगा त्रिपुरसुन्दरी पातु नः ।।२९।।

(अन्वय)

गणेशवटुकस्तुता, रतिसहायकामान्विता, स्मरारिवरविष्टरा, कुसुम-बाणबाणैर्युता, अनङ्गकुसुमादिभिः त्रिभिः सिद्धैः च परिवृता कदम्ब-वनमध्यगा त्रिपुरसुन्दरी नः पातु ।।२९।।

(अर्थ)

जो देवी गणेश और वटुकनाथ के द्वारा स्तुति की गई है, अर्थात् प्रणापान के प्रसर-प्रवेशात्मक कम से जिस का परामर्श अर्थात् अनुसंधान किया जाता है, जो रति सहित कामदेव से युक्त बनी हुई है, अर्थात् जो जगन्माता सशक्तिक इच्छा-स्वातन्त्र्य से संपन्न बनी हुई है, जो महादेवरूपी उत्तम आसन पर विराजमान है, कामदेव के पांच बाणों को जो धारण करती है, अर्थात् जो अपनी इच्छा की स्वतंत्रता के फल स्वरूप चित्त, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया-इन पांच अनुपम शक्तियों से संपन्न बनी हुई है और जो अनङ्ग अर्थात् निराकार पांच चिदादि शक्ति रूपी फूलों से तथा ज्ञानसिद्धों, योगसिद्धों और चर्यासिद्धों से घेरी हुई है, ऐसी ही कदम्ब-वन में अर्थात् नन्दन वन में विराजमान् महात्रिपुरसुन्दरी भगवती हमारी रक्षा करे ।।२९।।

यस्स्तोत्रमेतदनुवासरमीश्वरायाः
श्रेयस्करं पठति वा यदि वा श्रृणोति।
तस्येप्सितं फलति राजभिरीडयतेऽसौ
जायते स प्रियतमो मदिरेक्षणानाम्।।३०।।

(अन्वय)

ईश्वरायाः एतत् श्रेयस्करं स्तोत्रं यः अनुवासरं पठति यदि वा श्रृणोति, तस्य ईप्सितं फलति, असौ राजभिः ईढयते, (तथा)सः हरिणेक्षणानां प्रियतमः जायेत ।।३०।।

(अर्थ)

परा पारमेश्वरी के इस कल्याणप्रद स्तोत्र का जो प्रतिदिन पाठ करता है अथवा श्रवण करता है, उस की सभी मनोवांछित कामनाएं सफल बनती हैं और वह हरिण के समान चंचल वृत्ति वाली इन्द्रियों का अत्यन्त प्रिय बनता है। भाव यह है कि उसे अपनी इन्द्रियां स्वात्मानुसंधान की ओर लगा कर पारमार्थिक लाभ पहुँचाती हैं।।३०।।

ब्रह्मेन्द्ररुद्रहरिचन्द्रसहस्ररश्मि-
स्कन्दद्विपाननहुताशनवन्दितायै।
वागीश्वरि! त्रिभुवेश्वरि! विश्वमात-
रन्तर्बहिश्च कृतसंस्थितये नमस्ते ।।३१।।

(अन्वय)

वागीश्वरि! त्रिभुवनेश्वरि! 'विश्वमातः!ब्रह्मेंद्ररुद्र-हरिचंद्रसहस्त्ररश्मिस्कन्दद्विपानन-हुताशनवन्दितायै अन्तर्बहिश्र्चकृत-संस्थितये ते नमः (अस्तु) ।।३१।।

(अर्थ)

हे महासरस्वती देवी की ईश्वरी! हे जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति—इन तीन लोकों की स्वामिनी! हे जगन्माता! आप के स्वरूप को ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, नारायण, चन्द्रमा, सूर्यभगवान्,कुमार जी, गणेश जी और अग्निदेवता प्रणाम करते हैं। आप इस समस्त संसार के भीतर और बाहर ठहरी हुई हैं। आप को मेरा प्रणाम हो ।।३१।।

इति श्रीधर्माचार्यकृतौ पञ्चस्तव्यां
चर्चास्तवो द्वितीयः ।।२।।

ओं

अथ श्रीधर्माचार्यकृतौ पञ्चस्तव्यां
घटस्तवः तृतीयः

देवि! त्र्यम्बकपत्नि! पार्वति! सति! त्रैलोक्यमातः! शिवे!
शर्वाणि! त्रिपुरे! मृडानि! वरदे! रुद्राणि! कात्यायनि!
भीमे! भैरवि! चण्डि! शर्वरि! कले! कालक्षये! शूलिनि!
त्वत्पादप्रणताननन्यमनसः पर्याकुलान् पाहि नः ।।१।।

(अन्वय)

(हे देवि ...... अनन्यमनसः त्वत्पादप्रणतान् नः पर्याकुलान् पाहि ।।१।।)

(अर्थ)

हे विश्व-उल्लासनादि क्रीडा करने वाली देवी! हे महादेव की पत्नी! हे पार्वती! हे सती! हे तीनों लोकों की माता! हे कल्याण करने वाली! हे दुष्टों को नष्ट करने वाली! हे तीन लोकों को पूर्ण करने वाली! हे पारमार्थिक सुख देने वाली! हे भक्तों को अभीष्ट वर देने वाली! हे स्वरूप-गोपन और स्वरूप-विकास करने वाली! हे कत्य-ऋषि की कन्या! हे भयंकर स्वरूप को धारण करने वाली! हे भैरवनाथ की अर्द्धांगिनी! हे चण्डिका का स्वरूप धारण करने वाली! हे कालरात्री भगवती! हे सर्वत्र स्वतंत्र रूप वाली! हे काल को नष्ट करने वाली देवी! हे त्रिशूल को धारण करने वाली! हम एकाग्र मन से युक्त बने हुए आप के चरण-कमलों को प्रणाम करते हैं। हम सब ओर से व्याकुल बने हुए हैं। आप हमारी रक्षा कीजिए ।।१।।

उन्मत्ता इव सग्रहा इव विषव्यासक्तमूर्च्छा इव
प्राप्त प्रौढमदा इवातिविरहग्रस्ता इवार्ता इव।
ये ध्यायन्ति हि शैलराजतनयां धन्यास्त एकाग्रत-
स्त्यक्तोपाधिविवृद्धरागमनसो ध्यायन्ति वामभ्रुवः ।।२।।

(अन्वय)

ये धन्या: उन्मत्ता इव, सग्रहा इव, विषव्यासक्तमूर्च्छा इव, प्राप्तप्रौढमदा इव, अतिविरहग्रस्ता इव, आर्ता इव शैलराजतनयां ध्यायन्ति, ते त्यात्तोपाधिविवृद्धरागमनसः वामभ्रुवः ध्यायन्ति ।।२।।

(अर्थ)

जो भाग्यशाली जन मदान्ध व्यक्ति की भांति, हठीले मनुष्य की तरह, विष-आसक्त मूर्छित-जन की तरह, प्राप्त किये हुए गंभीर हर्ष की भांति, अत्यन्त विरह से विरही पुरुष की तरह अथवा व्याकुल बने हुए मनुष्य की नाईं आप गिरिजा का ध्यान करते हैं, उनका ध्यान सुन्दर नेत्रों वाली योगिनियां एकाग्रतापूर्वक करती रहती हैं, जो समस्त उपाधियों से रहित होती हैं और जो उन्नत हृदय वाली होती हैं। भाव यह है कि उस साधक की सभी उपाधियों को तिलांजलि देकर उन्नत हृदय से वे योगिनियां उस के वशवर्ती बन जाती हैं।।२।।

देवि त्वां सकृदेव यः प्रणमति क्षोणीभृतस्तं —
नमन्त्याजन्म स्फुरदङ्घ्रिपीठविलुठत्कोटीरकोटिच्छटाः।
यस्त्वामर्चति सोऽर्च्यते सुरगणैर्यः स्तौति स स्तूयते
यस्त्वां ध्यायति तं स्मरार्तिविधुरा ध्यायन्ति वामभ्रुवः ।। ३ ।।

(अन्वय)

हे देवि! यः त्वां सकृदेव प्रणमति, तं स्फुरदङ्घ्रिपीठलुठत्- कोटरिकोटिच्छटाः क्षोणीभृतः आजन्म नमन्ति। यः त्वाम् अर्चति सः सुरगणैः अर्च्यते, यः (त्वां) स्तौति स स्तूयते, यः त्वां ध्यायति तं स्मरार्तिविधुरा वामभ्रुवः ध्यायन्ति ।।३।।

(अर्थ)

हे द्योतनात्मिका देवि! जो भक्त एक बार भी आप को प्रणाम करता है अर्थात् अपने जीवन में एक बार भी आप का साक्षात्कार करता है, उस के सम्मुख बड़े बड़े सम्राट जीवन-पर्यन्त झुकते रहते हैं जिन सम्राटों की चरण-पादुका पर अनेकानेक गणराज्यों के मुकुटों के अग्रभाग की छटायें लगी रहती हैं, अर्थात् जिन के चरणों पर अनेक राजे झुके रहते हैं। हे देवी! जो आप की

पूजा हृदय से करता है, वह देवताओं के द्वारा पूजित होता है, जो आप की स्तुति करता है उस की स्तुति सारा जगत करता रहता है और जो आप का ध्यान करता है उस का ध्यान सभी इन्द्रिय-वृतियां करती रहती हैं अर्थात् उस साधक को एकाग्र बनाने में सहायक होती हैं ।।३।।

ध्यायन्ति ये क्षणमपि त्रिपुरे! हृदि त्वां
लावण्ययौवनधनैरपि विप्रयुक्ताः।
ते विस्फुरन्ति ललितायतलोचनानां
चित्तैकभित्तिलिखित प्रतिमाः पुमांसः ।।४।।

(अन्वय)

हे त्रिपुरे! ये त्वां हृदि क्षणमपि ध्यायन्ति, ते पुमांसः लावण्य- यौवन-धनैः विप्रयुक्ता अपि ललितायतलोचनानां चित्तैकभित्ति- लिखितप्रतिमाः (भूत्वा) विस्फुरन्ति ।।४।।

(अर्थ)

हे त्रिपुरा भगवती! जो भक्त-जन अपने हृदय में आप का ध्यान एक क्षण के लिये भी करते हैं, वे भले ही सौन्दर्य, यौवन तथा धन से रहित क्यों न हों, वे पुरुष सुन्दर तथा दीर्घ नेत्रों वाली योगिनियों के हृदय रूपी भित्ति पर सदा के लिए अंकित बने रहते हैं, भाव यह है कि योगिनियां उन को अपने हृदय में स्थान देती हैं और वे महायोगिनी मेलाप का उच्चत्तर अधिकार प्राप्त करते हैं ।।४।।

एतं किन्नु दृशा पिबाम्युत विशाम्यस्याङ्गमङ्गैर्निजैः
किं वामुं निगलाम्यनेन सहसा किं वैकताम्राश्रये।
तस्येत्थं विवशो विकल्पघटनाकूतेन योषिज्जनः
किं तद्यन्न करोति देवि! हृदये यस्य त्वमावर्तसे ।।५।।

(अन्वय)

एतं किं नु दृशा पिबामि, उत अस्य अंग निजैरंगैः विशामि, किं वा अमुं निगलामि, किं वा अनेन (सह) सहसा एकताम् आश्रये-इत्थं विकल्प- घटनाकूतेन विवशः योषिज्जनः तस्य तत् किम् (अस्ति) यन्न करोति—हे देवि! यस्य हृदयेत्वम् आवर्तसे ।।५।।

(अर्थ)

हे देवि! जिस भक्त के हृदय में आप प्रकट होती हैं उसे (योषित्-जन) परमेश्वर का शक्ति-चक्र यही चाहता है कि ''हम इसे देखते ही अर्थात् नेत्रों के द्वारा ही पियें, अपने नेत्रों का स्थान बनायें, अथवा इस के अंगों में अपने सभी अंग समायें, अर्थात् इस की परिमित प्रमातृता को समाप्त करके अपनी अपरिमित स्वात्मस्थिति प्रदान करें, या इसे हम एकबारगी ही निगल लें और अपने साथ इस को एक बनायें। इस भांति अनेकानेक कल्पनाओं के वशवर्ती बन कर भिन्न भिन्न प्रणालियों से वे परमेश्वर की शक्तियां इस के साथ-साथ ही रहने की इच्छा करती हैं। सच तो यह है कि भक्त के हृदय में आप का प्रविष्ट होना ही अनेकानेक कार्यों की सिद्धि का परिचायक है ।।५।।

विश्वव्यापिनि यद्वदीश्वर इति स्थाणावनन्याश्रयः
शब्दः शक्तिरिति त्रिलोकजननि! त्वय्येव तथ्यस्थितिः।
इत्थं सत्यपि शक्नुवन्ति यदिमाः क्षुद्रा रुजो बाधितुं
त्वद्भक्तानपि न क्षिणोषि च रुषा तद्देवि चित्रं महत् ।।६।।

(अन्वय)

हे त्रिलोकजननि! हे देवि! यद्वत ईश्वर इति शब्दः विश्वव्यापिनि स्थाणौ अनन्याश्रयः, (तद्वत्) शक्तिरिति (शब्दः) त्वयि एव तथ्यस्थितिः। इत्थं सत्यपि यदिमाः क्षुद्राः रुजः त्वद्भक्तानपि बाधितुं शक्नुवन्ति, (परन्तु त्वं) रुषा (तान्) न क्षिंणोषि, तत् महत् चित्रम् ।।६।।

(अर्थ)

हे तीनों लोकों को उत्पन्न करने वाली देवि! जिस भांति 'ईश्वर'—यह शब्द महादेव में लागू होता है, उसी भांति 'शक्ति'—यह शब्द भी तथ्य रूप से आप का परिचायक है। इतना होने पर अर्थात् सर्व-समर्थ होने पर भी आप के भक्तों को तुच्छ रोगादि, बाधा डालते ही रहते हैं और आप उन रोग आदि आपदाओं को अपने क्रोध से नष्ट नहीं करती हैं—यह तो बड़ा आश्चर्य है ।।६।।

इन्दोर्मध्यगतां मृगाङ्कसदृशच्छायां मनोहारिणीं
पाण्डूत्फुल्ल सरोरुहासनगतां स्निग्धप्रदीपच्छविम्।
वर्षन्तीममृतं भवानि! भवतीं ध्यायन्ति ये देहिन-
स्ते निर्मुक्तरुजो भवन्ति विपदः प्रोज्झन्ति तान्दूरतः ।।७।।

(अन्वय)

हे भवानि! इन्दोर्मध्यगतां मनोहारिणीं मृगांकसदृशच्छायां पाण्डु-उत्फुल्ल-सरोरुह- आसन-गतां स्निग्धप्रदीपच्छविं, अमृतं वर्षन्तीं भवतीं ये देहिनः ध्यायन्ति, ते निर्मुक्तरुजः भवन्ति, (एवं)तान् विपदः दूरतः प्रोज्झन्ति ।।७।।

(अर्थ)

हे पार्वती देवि! आप चन्द्रमा में अवस्थित मृगलांछन के समान सुन्दर और प्रफुल्लित श्वेत कमल रूपी आसन में विराजमान् हैं। आप तेल से प्रपूरित दीपक की चमक की भांति सर्वतः प्रकाश-पूर्ण हैं। आप सदा अमृत की वर्षा करती रहती हैं—इस प्रकार जो आप के स्वरूप का ध्यान करते हैं, वे सदा के लिए रोगों से मुक्त होते हैं और समस्त आपदायें उन्हें अपने से दूर रखती हैं। भाव यह है कि दुःख उनके समाने नहीं फटकने पाते ।।७।।

पूर्णेन्दोः शकलैरिवातिबहलैः पीयूषपूरैरिव
क्षीराब्धेर्लहरीभरैरिव सुधापंकस्य पिण्डैरिव।
प्रालेयैरिव निर्मितं तव वपुर्ध्यायन्ति ये श्रद्धया
चित्तान्तर्निहतार्तितापविपदस्ते संपदं बिभ्रति ।।८।।

(अन्वय)

पूर्णेन्दोः शकलैरिव, अतिबहलैः पीयूषपूरैरिव, क्षीराब्धेः लहरीभरैरिव, सुधापंकस्य पिण्डैरिव, (एवं) प्रालेयैरिव निर्मितं तव वपुः ये श्रद्धया ध्यायन्ति, ते चित्तान्तर्निहत- अर्तितापविपदः संपदं बिभ्रति ।।८।।

(अर्थ)

पूर्णमाशी के चमकते हुए चन्द्रमा की नाईं, अधिक मात्रा में बहते हुए अमृत के झरनों की भाँति, क्षीर-समुद्र के अधिकाधिक लहरों की भांति, अमृत रूपी

मिट्टी के गोलों की तरह या हिम की नाईं निर्मित आप का श्वेत स्वरूप का ध्यान जो श्रद्धा-पूर्वक करते हैं, वे अपने हृदय में ही आपदाओं तथा दयनीयता को नष्ट करके मोक्ष-रूपिणी संपदा अर्थात् मोक्षलक्ष्मी को धारण करते हैं ।।८।।

ये संस्मरन्ति तरलां सहसोल्लसन्तीं
त्वां ग्रन्थिपञ्चकभिदं तरुणार्कशोणम्।
रागार्णवे बहलरागिणि मज्जयन्तीं।
कृत्स्नं जगद्दधति चेतसि तान्मृगाक्ष्यः ।।९।।

(अन्वय)

ये तरलां, सहसा उल्लसन्तीं ग्रन्थिपंचकभिदं तरुणर्कशोणां बहलरागिणि रागार्णवे कृत्स्नं जगते मज्जयन्तीं त्वां संस्मरन्ति--तान् मृगाक्ष्यः चेतसि दधति ।।९।।

(अर्थ)

अकस्मात् अपनी इच्छा शक्ति से ही प्रकट होने वाली, मत्स्योदरी की भांति सर्वदा स्पन्दन-शील, पांच ग्रन्थियों (मूलाधार, नाभि, हृदय, कण्ठ और भ्रूमध्य) का भेदन करने वाली, बाल-सूर्य के समान रक्त-वर्ण वाली तथा समस्त जगत को लालिमा-पूर्ण भक्ति-सागर में ब्रुडित करने वाली आप जगदीश्वरी का ध्यान जो भक्त, भली भांति करते हैं, उन्हें हिरण के समान चंचल नेत्रों वाली करणेश्वरी देवियां अपने हृदय में सदा के लिये स्थान देती हैं, अर्थात् उन्हें, इन्द्रिय-वृत्तियों के व्यवहार-दशा में ही स्वरूप-लाभ-संपन्न बनाती हैं।।९।।

लाक्षारसस्नपितपंकजतन्तुतन्वी-
मन्तः स्मरत्यनुदिनं भवतीं भवानि।।
यस्तं स्मरप्रतिमम प्रतिमस्वरूपा
नेत्रोत्पलैर्मृगदृशो भृशमर्चयन्ति ।।१०।।

(अन्वय)

हे भवानि! यः लाक्षारसस्नपित पंकजतन्तुतन्वीं भवतीम् अनुदिनमन्तः

स्मरित, तं स्मरप्रतिमम् अप्रतिमस्वरूपा मृगदृशः नेत्रोत्पलैः भृशम् अर्चयन्ति ।।१०।।

(अर्थ)

हे भवानि! जो भक्त, लाख के रस में भिगोये हुए कमल के सूत के समान अत्यन्त सूक्ष्म और लालिमा से युक्त आप के स्वरूप का स्मरण अपने हृदय में प्रतिदिन करता है, उसे कामदेव के समान सुन्दर मानकर अत्यन्त अद्वितीय सौन्दर्य वाली और हिरण के समान सुन्दर नेत्रों वाली युवतियां अपने नेत्र रूपी कमलों के द्वारा उपासना करती है। भाव यह है कि उस भक्त की सभी करणेश्वरी शक्तियां उसे प्रथमाभास-धाम में ही स्थित करती हैं, जिस के फलस्वरूप वह भक्त, सदा के लिए आप के चिदानन्द-स्वरूप में लय हो जाता है।।१०।।

स्तुमस्त्वां वाचमव्यक्तां हिमकुन्देन्दुरोचिषम्।
कदम्बमालां बिभ्राणामापादतललम्बिनीम् ।।११।।

(अन्वय)

वयं हिमकुन्देन्दुरोचिषं (एवं) आपादतललम्बिनीं कदम्बमालां बिभ्राणां त्वाम् अव्यक्तां वाचं स्तुमः ।।११।।

(अर्थ)

बर्फ, कुन्द-पुष्प और चन्द्रमा की नाईं श्वेत तथा निर्मल प्रकाश से युक्त बनी हुई, तथा चरणों तक लटकती हुई कदम्ब-पुष्पों की माला को धारण करने वाली आप, अव्यक्त परावाणी की हम स्तुति करते हैं ।।११।। *

मूर्धीन्दोः सितपंकजासनगतां प्रालेयपाण्डुत्विषं
वर्षन्तीममृतं सरोरुहभुवो वक्त्रेऽपि रन्ध्रेऽपि च।
अच्छिन्ना च मनोहरा च ललिता चातिप्रसन्नापि च
त्वामेव स्मरतां स्मरारिदयिते वाक् सर्वतो वल्गति ।।१२।।

---

*वास्तव में वाणियां चार हैं। वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा। इन में पहिली दो वाणियां व्यक्त अर्थात् स्थूल हैं। तीसरी वाणी (पश्यन्ती) व्यक्ताव्यक्त-वाणी है और चौथी (परा वाणी) अव्यक्त वाणी है। इसी अव्यक्त वाणी की ओर इस श्लोक में संकेत किया गया है। कदम्बमाला शब्द में परा कुण्डालिनी की ओर संकेत है। तत्त्वदृष्टि से जगन्माता का वास्तविक स्वरूप परावाणी ही है जिस वाणी को अव्यक्त नाम से विभूषित किया गया है-और यही परा वाणी पराकुण्डालिनी कही जाती है ।।११।।

(अन्वय)

हे स्मरारिदयिते! मूर्धीन्दोः सितपंकजासनगतां, प्रालेयपाण्डुत्विषं, सरोरुहभुवः वक्त्रेऽपिच रन्ध्रेऽपिच त्वामेव स्मरतां (भक्तानां) अच्छिन्ना च, मनोहरा च, ललिता च, अतिप्रसन्ना च (सती) वाक् सर्वतः वल्गति ।।१२।।

(अर्थ)

हे महादेव की शक्ति देवी! आप भगवान् शिव रूपी अत्यन्त श्वेत कमल-स्वरूप आसन पर विराजमान हैं। आप बर्फ जैसी श्वेत दीप्ति वाली हैं। आप ब्रह्मस्थान के अधोवक्त्र मूलाधार में और ऊर्ध्ववक्त्र ब्रह्मरन्ध में परमानन्द रूपी अमृत की वर्षा करती हैं। इस प्रकार जो भक्त-जन, आप का ध्यान करते हैं, उन की वाणी निरन्तर रूप से मनोहर, सुन्दर तथा (सभी दोषों से रहित होने के फलस्वरूप) निर्मल बनी हुई सब ओर प्रसारित होती हैं, अर्थात् वे भक्त उच्च कोटि की कवित्वशक्ति प्राप्त करते हैं ।।१२।।

ददातीष्टान्भोगान्क्षपयति रिपून्हन्ति विपदो
दहत्याधीन्व्याधीञ्छमयति सुखानि प्रतनुते।
हठादन्तर्दुःखं दलयति पिनष्टीष्टविरहं
सकृद्ध्याता देवी किमिव निरवद्यं न कुरुते ।।१३।।

(अन्वय)

देवी सकृद्ध्याता इष्टान्भोगान् ददाति, रिपून क्षपयति, विपदः हन्ति, आधीन् दहति, व्याधीन् शमयति, सुखानि प्रतनुते, अन्तर्दुःखं हठात् दलयति (एवं) इष्ट-विरहं पिनष्टि (इत्येवं) तत्किमस्ति (यत्) निरवद्यं न कुरुते ।।१३।।

(अर्थ)

देवी यदि एक बार भी (भक्त के द्वारा) ध्यान की गई हो तो वह उस भक्त को अभिलषित भोगों को देती है। शत्रुओं को नष्ट करती है। विपदाओं को मार भगाती है। मानसिक पीड़ाओं को जला देती है। शारीरिक रोगों का शमन करती है। सुखों को बढ़ाती है अर्थात् सुख ही सुख देती है। आन्तरिक दुःखों को हठ-पूर्वक नष्ट करती है और अभीष्ट की अप्राप्ति को पीस डालती है--इस प्रकार अपने भक्त की कौनसी चाही हुई इच्छा को पूरा नहीं करती ।।१३।।

यस्त्वां ध्यायति वेत्ति विन्दति जपत्यालोकते चिन्तय-
त्यन्वेति प्रतिपद्यते कलयति स्तौत्याश्रयत्यर्चति।
यश्च त्र्यम्बकवल्लभे तव गुणानाकर्णयत्यादरा-
त्तस्य श्रीर्न गृहादपैति विजयस्तस्याग्रतो धावति ।।१४।।

(अन्वय)

हे त्र्यम्बकवल्लभे यस्त्वां ध्यायति, वेत्ति, विन्दति, जपति, आलोकते, चिन्तयति, अन्वेति, प्रतिपद्यते, कलयति, स्तौति, आश्रयति, अर्चति। यश्च तव गुणान् आदरात् आकर्णयति, तस्य श्रीः गृहात् न अपैति, विजयः तस्य अग्रतः धावति ।।१४।।

(अर्थ)

हे महादेव की प्रिय भगवती! जो भक्त आप का ध्यान करे, आप को भली भांति जाने, आप को प्राप्त करे, आप का जप करे, और आप का साक्षात्कार करे, एवं आप का चिन्तन करे, आप के स्वरूपानुसंधान करने में तत्पर रहे, आप की स्तुति करे या आप का आश्रय ग्रहण करे, आप की पूजा करे, अथवा बड़े आदर से आप के गुणों का श्रवण करे, उस के घर से सांसारिक और मोक्षप्रदा लक्ष्मी कभी नहीं भागती और विजय-लक्ष्मी उस भक्त के आगे आगे दौड़ती रहती है ।।१४।।

किं किं दुःखं दनुजदलिनी! क्षीयते न स्मृतायां
का का कीर्तिः कुलकमलिनि! ख्याप्यते न स्तुतायाम्।
का का सिद्धिः सुरवरनुते! प्राप्यते नार्चितायां
कं कं योगं त्वयिरन चिन्वते चित्तमालम्बितायाम् ।।१५।।

(अन्वय)

हे दनुजदलिनि! (त्वयि) स्मृतायां किं किं दुःखं न क्षीयते। हे कुल कमलिनि! (त्वयि) स्तुतायां का का कीर्तिः न ख्याप्ते; हे सुरवरनुते (त्वयि) अर्चितायां का का सिद्धिः न प्राप्यते। (एवं) त्वयि चित्तमालम्बितायां कं कं योगं न चिन्तवते ।।१५।।

(अर्थ)

हे दनुजदलनात्मक राक्षस को मारने वाली! आप का स्मरण करने पर कौन से दुःख नष्ट नहीं होते। हे जगत रूपी कुल में कमल के समान आह्लाद देने वाली! आप की स्तुति करने पर कौनसी कीर्ति प्राप्त नहीं होती। हे देववर इन्द्र के द्वारा स्तुति की गई भगवती! आप की अर्चना करने पर कौनसी सिद्धिः प्रकट नहीं होती और जिस भक्त ने अपने हृदय में आप को स्थान दिया हो तो उसे कौन-सा योग प्राप्त नहीं होता, अर्थात् वह भक्त योग की सभी सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है। यह है आपकी नाम-स्मरणा की महिमा ।।१५।।

ये देवि! दुर्धरकृतान्तमुखान्तरस्था
ये कालि! कलघनपाशनितान्तबद्धाः ।
ये चण्डि! चण्डगुरुकल्मषसिन्धुमग्ना
स्तान्पासि मोचयसि तारयसि स्मृतैव ।।१६।।

(अन्वय)

हे देवि! ये दुर्धरकृतान्तमुखान्तरस्थाः, हे कालि! ये कालघनपाश-नितान्तबद्धाः, हे चण्डि! ये चण्डगुरु- कल्मषसिन्धुमग्नाः,तैः स्मृता त्वं तान्पासि, मोचयसि तथा तारयसि ।।१६।।

(अर्थ)

हे देवि! जो जन भयंकर काल के मुख में प्रविष्ट हुए हों, हे काली! जो महाकाल के घने तथा दृढ़ फण-पाश में भली भांति बान्धे गये हों, और हे चण्डी! जो भयंकर पाप रूपी समुद्र में डूब गये हों, वे यदि वैसी आपत्तियों में आप का स्मरण करें तो आप (क्रम-पूर्वक) उन्हें महाकाल के मुख में जाने से रक्षा करती हैं, मृत्यु की जंजीरों से छुटकारा दिलाती हैं और पाप रूपी समुद्र से पार ले जाती हैं ।।१६।।

लक्ष्मीवशीकरणचूर्णसहोदराणि
त्वत्पाद पंकजरजांसि चिरं जयन्ति ।
यानि प्रणाममिलितानि नृणां ललाटे
लुम्पन्ति दैवलिखितानि दुरक्षराणि ।।१७।।

(अन्वय)

(हे देवि!) लक्ष्मीवशीकरण चूर्णसहोदराणि त्वत्पादपंकजरजांसि चिरं जयन्ति। यानि नृणां ललाटे प्रणाममिलितानि दैवलिखितानि दुरक्षराणि लुंपन्ति ।।१७।।

(अर्थ)

हे देवि! आप के चरण-कमलों की धूलि लक्ष्मी-वशी-करण-रूप चूर्ण की सगी बहिन है, अतः वह धूलि अनन्त समय के लिए विजयिनी है। वही धूलि के कण आप को प्रणाम करने के समय मनुष्यों के मस्तक में केवल लगने से ही भाग्य में लिखित बुरे अक्षरों को एक क्षण में मिटा देती है। भाव यह है कि आप के चरणों में नतमस्तक होकर मस्तक में लिखे हुए बुरे अक्षर एक बारगी मिट जाते हैं ।।१७।।

रे मूढाः किमयं वृथैव तपसा कायः परिक्लिश्यते
यज्ञैर्वा बहुदक्षिणैः किमितरे रिक्तिक्रियन्ते गृहाः ।
भक्तिश्चेदविनाशिनी भगवती पादद्वयी सेव्यता—
मुन्निद्राम्बुरुहापत्रसुभगा लक्ष्मीः पुरो धावति ।।१८।।

(अन्वय)

रे मूढाः! अयं कायः तपसा किं वृथैव परिक्लिश्यते, अथवा बहुदक्षिणैर्यज्ञैः इतरे गृहाः किं रिक्तक्रियन्ते, चेत् अविनाशिनी भक्तिः (अस्ति) (तर्हि) भगवतीपादद्वयी सेव्यताम्, (इत्येवं)उन्निद्राम्बरुहातपत्रसुभगा लक्ष्मीः पुरः धावति ।।१८।।

(अर्थ)

हे मूर्ख पुरुषो! तुम व्यर्थ ही तपस्या करके भला क्यों अपने शरीर को दुःख देते हो? यज्ञादिकों में ब्राह्मणों को बहुत दक्षिणा देकर अथवा अन्यान्य (दानादिकों) को देकर अपने घरों को क्यों रिक्त,संपत्ति-रहित बना देते हो? यदि तुम में नाशरहित भक्ति है और तुम भगवती के चरणों का सेवन करोगे तो प्रफुल्लित कमल-पत्रों की तरह सुन्दर बनी हुई मोक्षलक्ष्मी तुम्हारे आगे-आगे दौड़ेगी, अर्थात् तुम उस मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त करोगे ।।१८।।

याचे न कंचन न कंचन वञ्चयामि
सेवे न कंचन निरस्तसमस्तदैन्यः ।
श्लक्ष्णं वसे मधुरमद्मि भजे वरस्त्रीं
देवी हृदि स्फुरति मे कुल कामधेनुः ।।१९।।

(अन्वय)

(अहं) न कंचन याचे, न कंचन वञ्चयामि, न कंचन सेवे। (अहं) निरसतसमस्तदैन्यः। (तथापि अहं) श्लक्ष्णं वसे, मधुरम् अद्मि, वरस्त्रीं (च) भजे। (तत्त्वदृष्टया) मे हृदि कुलकामधेनुः देवी स्फुरति ।।१९।।

(अर्थ)

मैं किसी से न तो कोई वस्तु मांगता ही हूं, न किसी को धोखा देकर धन प्राप्त करता हूं और न किसी की दास-वृत्ति ही करता हूं, अतः मैंने सभी दीनता दूर की है। किन्तु आश्चर्य यह है कि न मांगने पर भी मैं रेशमी आदि कोमल वस्त्र ही पहनता हूं, मधु स्वादिष्ट भोजन ही खाता हूं और सर्वोत्तर पराशक्ति का ही सेवन करता हूं। हे देवि! वस्तुतः यह सभी प्रभाव मुझे तभी प्राप्त है जबकि आप मेरे हृदय में विकसित होकर स्वार्गिक कामधेनु की भांति विराजमान रहती हैं ।।१९।।

शब्दब्रह्ममयि ! स्वच्छे देवि! त्रिपुरसुन्दरि!
यथाशक्ति जपं पूजां गृहाण परमेश्वरि! ।।२०।।

(अन्वय)

हे शब्दब्रह्ममयि! हे स्वच्छे देवि! त्रिपुरसुन्दरि! परमेश्वरि! यथाशक्ति जपं पूजां गृहाण ।।२०।।

(अर्थ)

हे शब्दब्रह्म-स्वरूपा परा देवी! हे निर्मल त्रिपुरा देवी! हे परमेश्वरी ! मैं अपनी शक्ति के अनुसार जो भी पूजा अथवा जप करता हूं, उसे आप (सहर्ष) स्वीकार कीजिए ।।२०।।

नन्दन्तु साधकाः सर्वे विनश्यन्तु विदूषकाः ।
अवस्था शाम्भवी मेऽस्तु प्रसन्नोऽस्तु गुरुः सदा ।।२१।।

(अन्वय)

सर्वे साधकाः नन्दन्तु! सर्वे विदूषकाः नश्यन्तु! मे शाम्भवी अवस्था अस्तु! (तथा) गुरुः सदा प्रसन्नोऽस्तु ।।२१।।

(अर्थ)

सभी साधक-जन अर्थात् भक्त-जन प्रसन्न रहें! सारे विघ्न नष्ट हो जायें! शाम्भवी परा अवस्था मुझे प्राप्त हो और गुरु-देव मुझ पर सदा प्रसन्न रहें! (यही अभिलाषा है) ।।२१।।

दर्शनात्पापशमनी जपान्मृत्युविनाशिनी।
पूजिता दुःखदौर्भाग्यहरा त्रिपुरसुन्दरी ।।२२।।

(अन्वय)

(भगवती) त्रिपुरसुन्दरी दर्शनात् पापशमनी, जपात् मृत्यु- विनाशिनी, (तथा) पूजिता (सती) दुःखदौर्भाग्यहरा (भवति) ।।२२।।

(अर्थ)

आप जगदम्बा त्रिपुरसुन्दरी भगवती दर्शन-मात्र से ही सभी पापों को नष्ट करती हैं, जप करने से मृत्यु का नाश करती हैं अर्थात् मुक्त बना देती हैं और पूजा करने से समस्त दुःखों तथा कुभाग्यों को दूर करती हैं ।।२२।।

नमामि यामिनीनाथलेखालङ्कृतकुन्तलाम्।
भवानीं भवसन्तापनिर्वापणसुधानदीम् ।।२३।।

(अन्वय)

(अहं) यामिनीनाथलेखालङ्कृतकुन्तलांभवसन्तापनिर्वापण- सुधानदीं भवानीं नमामि ।।२३।।

(अर्थ)

मैं चन्द्र-लेखा से सुशोभित बनाये हुए केशों अर्थात् शक्ति-चक्रों से युक्त बनी हुई पार्वती भगवती को नमस्कार करता हूं जा संसार के दुःखों को हटाने में अमृत की नदी के समान सुख देने वाली है ।।२३।।

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं विधिहीनं च यदगतम्।
त्वया तत्क्षम्यतां देवि! कृपया परमेश्वरी ।।२४।।

(अन्वय)

हे देवि! यत् मन्त्रहीनं, क्रियाहीनं, च विधिहीनं गतम्, तत् त्वया क्षम्यतां कृपया, हे परमेश्वरि! ।।२४।।

(अर्थ)

हे परमेश्वरी देवी! मन्त्र-रहित, क्रिया-रहित अथवा विधि-रहित जो कुछ भी मुझ से हुआ है,हे माता! आप उस सब कुछ के लिए कृपा करके मुझे क्षमा कीजिए ।।२४।।

इति श्रीधर्माचार्यकृतौ
पञ्चस्तव्यां षट्स्तवः
तृतीयः

ओं तत् सत्
अथ
अम्बास्तवः चतुर्थः

यामामनन्ति मुनयः प्रकृतिं पुराणीं
विद्येति यां श्रुतिरहस्यविदो वदन्ति।
तामर्धपल्लवितशंकर रूपमुद्रां
देवीमनन्यशरणः शरणं प्रपद्ये ।।१।।

(अन्वय)

यां मुनयः पुराणीं प्रकृतिम् आमनन्ति, यां च श्रुतिरहस्यविदः विद्या-इति वदन्ति, ताम् अर्धपल्लवितशंकररूपमुद्रां देवीम् (अहम्) अनन्यशरणः शरणं प्रपद्ये ।।१।।

(अर्थ)

जिसे सभी मुनि-जन आद्य परा प्रकृति कहते हैं, जिसे वेदान्त-वित् आचार्य-वर्ग विद्या नाम से विभूषित करते हैं और जिसने अपने अर्ध-शरीर के संपर्क से प्रफुल्लित बने हुए शंकर के स्वरूप को आनन्द प्रदान किया है उसी भगवती उमा देवी को मैं (अनन्य-शरण) जिसका उस भगवती के बिना कोई सहारा नहीं, प्रणाम करता हूं ।।१।।

अम्ब स्तवेषु तव तावदकर्तृकाणि
कुण्ठीभवन्ति वचसामपि गुम्फनानि।
डिम्बस्य मे स्तुतिरसावसमञ्जसापि
वात्सल्यनिघ्नहृदयां भवतीं धिनोति ।।२।।

(अन्वय)

अम्ब! अकर्तृकाणि वचसां गुम्फनानि अपि तावत् तव स्तवेषु कुण्ठीभवन्ति। मे डिम्बस्य असौ स्तुतिः असमञ्जसापि वात्सल्यनिघ्नहृदयां भवतीं धिनोति ।।२।।

(अर्थ)

हे माता! तुम्हारी स्तुति करने में अपौरुषेय अर्थात् जिनका परमेश्वर के बिना कोई करने वाला नहीं है ऐसी वेदों की सुन्दर रचनाएं भी कुण्ठित हो जाती हैं। मुझ मूर्ख बालक की यह प्रस्तुत, स्तुति असमीचीन होने पर भी आप को अवश्य आकर्षित और प्रसन्न करती ही है, क्योंकि आप का हृदय भक्तों के प्रेमभाव से सदैव स्नेह से द्रवीभूत होता है ।।२।।

व्योमेति बिन्दुरिति नाद इतीन्दुलेखा-
रूपेति वाग्भवतनूरिति मातृकेति।
निःष्यन्दमानसुखबोधसुधास्वरूपा।
विद्योतसे मनसि भाग्यवतां जनानाम् ।।३।।

(अन्वय)

भाग्यवतां जनानां मनसि निःष्यन्दमानसुखबोधस्वरूपा (त्वम्) व्योम इति, बिन्दुरिति, नाद इति, इन्दुलेखारूपा इति, वाग्भवतनूरिति, मातृका-इति च विद्योतसे ।।३।।

(अर्थ)

हे देवी! आप भाग्यशाली भक्त-जनों के हृदय में, अपने परमानन्द-बोध स्वरूप से प्रवाहित होती हुई—परमाकाश रूप से, प्रकाश-रूपता से, विमर्श-रूपता से, चन्द्र-कला-रूपता से, सरस्वती के रूप से तथा पूर्णाहन्ता रूप मातृका के स्वरूप से विकसित होती हैं ।।३।।

आविर्भवत्पुलकसन्ततिभिः शरीरै-
र्निष्यन्दमानसलिलैर्नयनैश्च नित्यम्।
वाग्भिश्च गद्गद्पदाभिरुपासते ये
पादौ तवाम्ब भुवनेषु त एव धन्याः ।।४।।

(अन्वय)

हे अम्ब! आविर्भवत्पुलकसन्ततिभिः शरीरैः, निष्यन्दमान- सलिलैर्नयनैश्च गद्गद्पदाभिर्वाग्भिः ये तव पादौ नित्यम् उपासते,, ते एव भुवनेषु धन्याः ।।४।।

(अर्थ)

हे माता! जो भक्त-जन, हर्ष के कारण रोमांचित बने हुए शरीरों से, बहते हुए प्रेमाश्रुओं से युक्त नेत्रों से, तथा गद्‌गद् भरी वाणियों से आप के चरणों की उपासना सदा करते रहते हैं, वे ही तीनों भुवनों में पूर्णरूपेण भाग्यशाली हैं। भाव यह है कि ऐसे भक्तों का जन्म प्रशंसनीय है ।।४।।

वक्त्रं यदुद्यतमभिष्टुतये भवत्या –
स्तुभ्यं नमो यदपि देवि! शिरः करोति।
चेतश्च यत्त्वयि परायणमम्ब! तानि
कस्यापि कैरपि भवन्ति तपोविशेषैः ।। ५ ।।

(अन्वय)

हे देवि! यद्वक्त्रं भवत्याः अभिष्टुतये उद्यतम्। यदपि शिरः तुभ्यं नमः करोति। हे अम्ब! यत् चेतः त्वयि परायणम्। तानि कस्यापि कैरपि तपोविशेषैः भवन्ति ।। ५ ।।

(अर्थ)

हे देवी! जो मुख आप की स्तुति करने में लगा हो, जो शिर आप को भक्ति से नमस्कार करता हो, और हे माता! जो हृदय आप के ध्यान में तत्पर बना हो, वे मुख, सिर तथा हृदय किसी ही भाग्यशाली व्यक्ति को किन्हीं अलौकिक विशेष तपस्याओं के फल-स्वरूप प्राप्त होते हैं ।।५।।

मूलालवालकुहरादुदिता भवानि!
निर्भिद्य षट्सरसिजानि तडिल्लतेव।
भूयोऽपि तत्र विशसि ध्रुवमण्डलेन्दु–
निःष्यन्दमानपरमामृततोयरूपा ।।६।।

(अन्वय)

हे भवानि! मूलालवालकुहरात् तडिल्लतेव उदिता (त्वं) षट् सरसिजानि निर्भिद्य ध्रुवमण्डलेन्दुनिःष्यन्दमानपरमामृततोयरूपा (सती) तत्र भूयोऽपि विशसि ।।६।।

(अर्थ)

हे भवानी! आप मूलाधार के आलवाल (वृक्षों की जड के पास जल-सिंचन के लिए बनाया हुआ गोलाकार स्थान) रूपी कुहर अर्थात् रन्ध्र से बिजली की रेखा की भांति उदित होकर षट्चक्र रूपी कमलों का भेदन करती हैं तदनन्तर पुनः उसी मूलाधार में प्रवेश करती हैं। इस भांति ब्रह्म-रन्ध्र मण्डल के सहस्रारचक्र में अवस्थित अमाकला रूपी परमानन्द से प्रवाहित उत्कृष्ट अमृत-जल से समस्त शरीर को अमृतमय बना देती हैं। तात्पर्य यह है कि जब कुण्डलिनी शक्ति का उदय साधक के शरीर में होता है तो उस का समस्त शरीर परमामृत-रस से सींचा जाता है ।।६।।

दग्धं यदा मदनमेकमनेकधाते
मुग्धः कटाक्षविधिङ्कुरयांचकार।
धत्ते तदा प्रभृति देवि! ललाटनेत्रं
सत्यं ह्रियेव मुकुलीकृतमिन्दुमौलिः ।।७।।

(अन्वय)

हे देवि! यदा एकं मदनं दग्धं, (तदा) ते मुग्धः कटाक्षविधिः अनेकधा (तम्) अंकुरयाञ्चकार। सत्यम् (एतत् यत्) तदा प्रभृति इन्दुमौलिः ललाटनेत्रं ह्रियाइव मुकुलीकृतं धत्ते ।।६।।

(अर्थ)

हे देवी! जब महादेव जी ने कामदेव को अपने तीसरे नेत्र से जला दिया तो आप की मोहित करने वाली तिरछी चितवन ने पुनः इस कामदेव रूपी कली को अनेकानेक दम्पति-वर्ग में जन्म दिया। अनुमान किया जाता है कि सत्यतः तभी से चन्द्र-कला-धारी शंकर ने लज्जा-वश इस तीसरे ललाट-नेत्र को कुछ खुले और कुछ बन्द रूप से अर्धनिमीलित दशा में रखा है ।।६।।

अज्ञातसंभवमनाकलितान्ववायं
भिक्षुं कपालिनमवाससमद्वितीयम्।
पूर्वं करग्रहणमङ्गलतो भवत्याः
शंभुं क एव बुबुधे गिरिराजकन्ये ।।८।।

(अन्वय)

हे गिरिराजकन्ये! अज्ञातसंभवम्, अनाकलितान्ववायम्, भिक्षुं, कपालिनम्, अवाससम् अद्वितीयं च शंभुं भवत्याः करग्रहणमंगलतः पूर्वं क एव बुबुधे ।।८।।

(अर्थ)

हे हिमालय पर्वतराज की पुत्री! जिन महादेव जी का जन्म अज्ञात है, जिन के वंश को कोई भी नहीं जानता, जो खप्पर में भिक्षा ग्रहण करते हैं, (जिनका निवासस्थान कोई नहीं है) जिनको पहनने के लिए कोई वस्त्र नहीं है– ऐसे अनिकेत अद्वितीय भगवान् शंकर को, आपके मंगलात्मक पाणिग्रहण करने से पूर्व भला कौन जानता था, कोई भी तो नहीं ।।८।।*

चर्माम्बरं च शवभस्मविलेपनंच
भिक्षाटनं च नटनं च परेतभूमौ।
वेतालसंहतिपरिग्रहता च शम्भोः
शोभां बिभर्ति गिरिजे! तव साहचर्यात् ।।९।।

(अन्वय)

हे गिरिजे! शम्भोः चर्माम्बरं च, शवभस्मविलेपनं च, भिक्षाटनं च, परेतभूमौ नटनं च, वेतालसंहतिपरिग्रहता च, तव साहचर्यात् शोभां बिभर्ति ।।९।।

(अर्थ)

हे पर्वतराज की पुत्री! वस्त्रों के बदले मृगछाला का धारण करना, मुर्दों की राख समस्त शरीर में मलना, इधर उधर भिक्षा के लिए मारे मारे घूमना, प्रेत-भूमि में नाचना और वेताल-भैरव आदि के समूह का ग्रहण करना शिव को, आप के साथ चलने से ही शोभा को बढ़ाता है ।।९।।

---

* भाव यह है कि शिव के साथ शक्ति का समावेश होता है तभी शिव का साक्षात्कार हो सकता है। इत्यतः शक्ति ही शिव-साक्षात्कार का एक-मात्र साधन है। कहा भी है–

"शैवी मुखमिहोच्यते"

अर्थात शक्ति ही शिव की प्राप्ति का एक-मात्र उपाय है।

कल्पोपसंहरणकेलिषु पण्डितानि
चण्डानि खण्डपरशोरपि ताण्डवानि।
आलोकनेन तव कोमलितानि मातम
र्लास्यात्मना परिणमन्ति जगद्विभूत्यै ।।१०।।

(अन्वय)

हे मातः! कल्पोपसंहरणकेलिषु खण्डपरशोः पण्डितानि चण्डानि ताण्डवानि तव लास्यात्मना आलोकनेन कोमलितानि (भूत्वा) जगद्विभूत्यै परिणमन्ति ।।१०।।*

(अर्थ)

हे माता! खण्डपरशोः टूटा कुल्हाडा जिस का आयुध है ऐसे शंकर जी का भयंकर ताण्डव-नृत्य, जो युगों की संहरण-क्रीडा में दक्ष है, वह भी आप के लास्यात्मक नृत्य-रूपता को देखने के फल-स्वरूप अपनी चण्डरूपता अर्थात् भयंकर रूपता को छोड़कर अत्यन्त कोमल होकर जगत को पुनः सुखपूर्वक स्थापित करने में परिणत हो जाता है ।।१०।।

जन्तोरपश्चिमतनोः सति कर्मसाम्ये
निःशेषपाशपटलच्छिदुरा निमेषात्।
कल्याणि! दैशिककटाक्षससमाश्रयण
कारुण्यतो भवसि शाम्भववेधदीक्षा ।।११।।

(अन्वय)

हे कल्याणि! अपश्चिमतनोः जन्तोः कर्मसाम्ये सति (त्वम्) दैशिक-कटाक्षसमाश्रयेण कारुण्यतः निमेषात् निःशेषपाशपटलच्छिदुरा (सती) शाम्भववेधदीक्षा भवसि ।।११।।

---

* भाव यह है कि भगवान् शंकर जिस समय ताण्डव-नृत्य-द्वारा समस्त भूमण्डल का नाश करने के लिए तुले होते हैं, उसी समय भगवती ज्यों ही लास्य-नृत्य करती हुई आप की ओर देखने लगती है, तो समस्त भू-मण्डल जो नाश के सन्मुख था, फिर से सुख-पूर्वक स्थापित होने लगता है। इस भांति शिव की सर्व-संहरणात्मक प्रवृत्ति, शक्ति के प्रभाव से सृष्टिरूपता में प्रवृत्त होती है ।।१०।।

(अर्थ)

हे कल्याणमयी माता! जिस का फिर से जन्म होने वाला नहीं है, अर्थात् जिस व्यक्ति को मोक्ष होने वाला है उस पुरुष के सभी पाश-पटल अर्थात् आणव, मायीय और कार्म--ये तीनों मल आप अपनी अनुग्राहिका-शक्ति से गुरुदेव की अनुकम्पा का आश्रय लेकर निमेष-मात्र में काट देती हैं और इस प्रकार शाम्भव रूपी वेधदीक्षा उसकी सिद्ध हो जाती है ।।.११।।

मुक्ताविभूषणवती नवविद्रुमाभा
यच्चेतसि स्फुरसि तारकितेव सन्ध्या।
एकः स एव भुवनत्रय सुन्दरीणां
कन्दर्पतां व्रजति पञ्चशरीं विनापि ।।१२।।

(अन्वय)

देवि! मुक्ताविभूषणवती नवविद्रुमाभा (त्वं) यच्चेतसि तारकिता सन्ध्या इव स्फुरसि, स एकः एव पंचशरीं विनापि भुवनत्रयसुन्दरीणां कन्दर्पतां व्रजति।।१२।।

(अर्थ)

हे देवी! मोतियों के भूषणों से सुसज्जित, नये विद्रुमों की तरह लाल दीप्ति वाली (आप) जिस भक्त के हृदय में तारामण्ड से संयुक्त संध्या जैसी विकसित होती हैं, केवल वही एक-भक्त, त्रिभुवन का (अर्थात् जाग्रत-स्वप्न और सुषप्ति) इन तीन अवस्थाओं में शासन करने वाली (मनुष्य को नचाने वाली) इन्द्रिय-शक्तिया पाञ्चबाणों अर्थात् रूपादि पांच विषयों का सेवन किए बिना ही कन्दर्प-रूपता को प्राप्त होता है, अर्थात् समस्त करणेश्वरी-चक्रका ईश्वर बन जाता है ।।१२।।

ये भावयन्त्यमृतवाहिभिरंशुजालै-
राप्यायमानभुवनाममृतेश्वरीं त्वाम्।
ते लङ्घयन्ति ननु मातरलङ्घनीयां
ब्रह्मादिभिः सुरवरैरपि कालकक्ष्याम् ।।१३।।

(अन्वय)

हे मातः! अमृतवाहिभिरंशुजालैः आँप्यायमानभुवनां त्वाम् अमृतेश्वरीं ये भावयन्ति, ननु ते ब्रह्मादिभिः सुरवरैपि अलंघनीयां कालकक्ष्यां लंघयन्ति ।।१३।।

(अर्थ)

हे माता! अमृत बहाने वाली अपनी किरणों के समूह से तीनों लोकों को आप्यायन करने वाली आप अमृतेश्वरी का जो ध्यान करते हैं, निश्चित रूप से वे ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवताओं से अलंघनीय अर्थात् पार न किये जाने वाले (भूत, भविष्यत और वर्तमान इस) काल-कलना को पार कर जाते हैं ।।१३।।

यःस्फाटिकाक्षगुणपुस्तककुण्डिकाढ्यां
व्याख्यासमुद्यतकरां शरदिन्दुशुभ्राम्।
पद्मासनां च हृदये भवतीमुपास्ते
मातः !स विश्वकवितार्किकचक्रवर्ती ।।१४।।

(अन्वय)

हे मातः! यः स्फाटिकाक्षगुणपुस्तककुण्डिकाढयां व्याख्या- समुद्यतकरां शरदिन्दुशुभ्रां पद्मासनां च भवतीं हृदये उपास्ते, स विश्व कविता-र्किकचक्रवर्ती (भवति) ।।१४।।

(अर्थ)

हे माता! (आप अपने चार हाथों में) स्फाटिकमणि की जपमाला, पुस्तक, कमण्डल और उपदेश करने के लिए उठाए हुए हाथों वाली हैं। आप पद्मासन पर विराजमान और शरद्-ऋतु के चन्द्रमा जैसी अत्यन्त श्वेतावर्ण में चमकती हुई हैं। इस प्रकार जो भक्त, आप का ध्यान अपने हृदय में करता है, वह सारे संसार के कवियों और तार्किक आचार्यवरों का चक्रवर्ती राजा बनता है ।।१४।।

वर्हावतंसयुतबर्बरकेशपाशां
गुञ्जावलीकृतघनस्तनहारशोभाम्।
श्यामां प्रवालवदनां सुकुमारहस्तां
त्वामेव नौमि शवरीं शवरस्य जायाम् ।।१५।।*

(अन्वय)

वर्हावतंसयुतबर्बरकेशपाशां गुञ्जावलीकृतघनस्तनहारशोभां- श्यामां प्रवालवदनां सुकुमारहस्तां शवरस्य जायां त्वां शवरीम् एव नौमि ।।१५।।

(अर्थ)

(हे पार्वती जी!) आप मोर पंखों के मुकुट को धारण करती हुई भूरे अर्थात् सुनहरी रंग के जटा-जूट से युक्त हैं। घुंघचियों की पहनी हुई माला आप के स्तनों की शोभा बढ़ाती है। आप श्यामा रूप को धारण करती हुई सुन्दर मुखाकृति और कोमल हाथों से युक्त हैं। इस प्रकार शिकारी का रूप धारण करने वाले शंकर जी की पत्नी शिकारिण का रूप धारण करने वाली आप भगवती की मैं स्तुति करता हूं ।।१५।।

अर्धेन किं नवलताललितेन मुग्धे!
क्रीतं विभोः परुषमर्धमिदं त्वयेति।
आलीजनस्य परिहासवचांसि मन्ये
मन्दस्मितेन तव देवि! जडी भवन्ति ।।१६।।

(अन्वय)

हे मुग्धे देवि! त्वया नवलताललितेन अर्धेन (सह) विभोः इदं परुषम् अर्धं किं क्रीतम्? आलीजनस्य इतिपरिहासवचांसि तव मन्दस्मितेन जडीभवन्ति— इति अहं मन्ये ।।१६।।

---

* भक्त अर्जुन को युद्ध करते समय पाशुपत अस्त्र की आवश्यकता पड़ी। अतः इस अस्त्र को प्राप्त करने के लिए उसने भगवान् शंकर की आराधना की। समय आने पर उस की आराधना सफल हुई और भगवान् शंकर ने शिकारी के रूप में उसको दर्शन दिया। भगवान् शंकर के पीछे पीछे पार्वती जी भी शिकारिण के रूप में आईं। पार्वती जी के इसी रूप की ओर इस श्लोक में संकेत है ।।१५।।

(अर्थ)

हे मोहित करने वाली देवी! तुम्हारा शरीर नवीन लता के समान सुन्दर है, ऐसे किसलय-सदृश्य शरीर को शंकर जी को देकर और बदले में उनका कठोर तथा फूहड़ आधा भाग क्यों खरीदा—इस भांति सखियों के हास-परिहास युक्त वचनों के प्रति आप केवल अपने मन्द मुस्कान से ही उनके इन परिहास- वचनों को टाल देती हैं। आप के ऐसा करने पर ही वे सखियां मूक बन जाती हैं और फिर से उन्हें ऐसा बोलने का साहस नहीं होता ।।१६।।

ब्रह्माण्डबुद्बुदकदम्बकसंकुलोऽयं
मायोदधिर्विविधदुःखतरङ्गमालः।
आश्चर्यमम्ब! झटिति प्रलयं प्रयाति
त्वद्ध्यानसन्ततिमहावडवामुखाग्नौ ।।१७।।

(अन्वय)

हे अम्ब! ब्रह्माण्डबुदबुदकदम्बकसंकुलः विविधदुःखतरङ्गमालः अयं मायोदधिः त्वद्ध्यानसंततिमहावड्वामुखाग्नौ झटिति प्रलयं प्रयाति (इति) आश्चर्यम् ।।१७।।

(अर्थ)

हे माता! यह माया रूपी संसार एक अथाह समुद्र है। इसमें अनेक विचित्र दुःखात्मक तरंगों की मालाएं विद्यमान हैं। अनेक ब्रह्माण्ड रूपी बुलबुलों का समूह इस सागर में पाया जाता है।आश्चर्य है कि जब भी इस ऐसे भयंकर सागर में कोई व्यक्ति आप का ध्यान, अनथक रूप से करता है, तब मानो कि आपका यह ध्यान भी महान वडवाग्नि बन जाता है और ये ऊपर वर्णित बुलबुलों से तथा भिन्न भिन्न प्रकार के दुःख रूपी तरंगों सहित संसार रूपी समुद्र, क्षण-मात्र में लय हो जाता है और संसार-समुद्र का नाम सदा के लिए मिट जाता है ।।१७।।

दाक्षायणीति कुटिलेति गुहारणीति
कात्यायनीति कमलेति कलावतीति।
एका सती भगवती परमार्थतोऽपि
संदृश्यसे बहुविधा ननु नर्तकीव ।।१८।।

(अन्वय)

हे मातः! परमार्थतोऽपि एका अपि त्वं भगवती सती, दाक्षायणीति, कुटिला इति, गुहारणीति, कात्यायनीति कमला इति कलावतीति च नर्तकी इव बहुविधा संदृश्यसे ।।१८।।

(अर्थ)

हे माता! यद्यपि पारमार्थिक दृष्टि से आप भगवती एक ही स्वरूप वाली हो तथापि दक्षप्रजापति की कन्या होने से दाक्षायणी नाम से, साढे तीन बार मुडी होने से कुण्डलिनी-स्वरूप कुटिला नाम से, हृदय रूपी गुफा में ठहरने के फल-स्वरूप गुहारणी नाम से, कत्य-ऋषि की कन्या होने से कात्यायनी नाम से, संकोचविकासात्मक धर्म-युक्त होने से कमला नाम से तथा सृष्टि आदि पांच कृत्यों के करने से कलावती नाम से नर्तकी की तरह अनेक स्वरूपों को धारण करती हुई दिखाई देती हो ।।१८।।

आनन्दलक्षणमनाहतनाम्नि देशे
नादात्मना परिणतं तव रूपमीशे।
प्रत्यङ्मुखेन मनसा परिचीयमानं
शंसन्ति नेत्रसलिलैः पुलकैश्च धन्याः ।।१९।।

(अन्वय)

ईशे! आनन्दलक्षणम् नादात्मना परिणत अनाहतनाम्नि देशे प्रत्यङ्मुखेन मनसा परिचीयमानं तव रूपम् धन्याः नेत्रसलिलैः पुलकैश्च शंसन्ति ।।१९।।

(अर्थ)

हे शासन करने वाली देवी! आनन्द-स्वरूप तथा अहंपरामर्श रूपी नाद से परिणत बना हुआ, अनाहतस्वरूप वाले सहस्रार-चक्र में जब अन्तर्मुख मन से आप का स्वरूप देखते हैं तो उस समय वे भाग्यशाली योगी-जन शब्दों से नहीं वरन नेत्र-अश्रुओं से और पुलकित-भाव से ही उस आप के स्वरूप को जतलाते हैं ।।१९।।*

त्वं चन्द्रिका शशिनि तिग्मरुचौ रुचिस्त्वं
त्वं चेतनासि पुरुषे पवने बलं त्वम्।
त्वं स्वादुतासि सलिले शिखिनि त्वमूष्मा
निःसारमेव निखिलं त्वदृते यदि स्यात् ।।२०।।

(अन्वय)

शशिनि त्वं चन्द्रिका (असि) तिग्मरुचौ त्वं रुचिः, पुरुषे त्वं चेतना असि, पवने त्वं बलम् (असि), सलिले त्वं स्वादुता, (एवं) शिखिनि त्वम् ऊष्मा। (यत् किंचित्) त्वदृते स्यात् तत् निखिलं निःसारमेव ।।२०।।

(अर्थ)

हे जगन्माता! आप चन्द्रमा में चान्दनी हैं। सूर्यदेवता में प्रकाश हैं। पुरुष में चेतना हैं। वायु में बल अर्थात् वेग हैं। जल में मिठास हैं और अग्नि में ऊष्णता हैं अर्थात् आप ही समस्त भावाभावात्मक यानी, दिखाई देने वाले और न दिखाई देने वाले जगत का सार हैं। सच तो यह है कि यदि आप की सत्ता जागतिक पदार्थों में न हो तो ये सभी पदार्थ सत्ता-विहीन अर्थात् फोक हैं। भाव यह है कि आप की विश्व-व्यापिनी शक्ति से ही सारा संसार अपनी स्वरूप-सत्ता से युक्त दृष्टि-गोचर होता है ।।२०।।

---

* भाव यह है कि जब भक्त योगी आप के स्वरूप का साक्षात्कार करता है तो उस समय उसे सहज ही नेत्रों से अश्रु-धाराएं बहती हैं और उस का सारा शरीर पुलकित हो जाता है अर्थात् रोम-हर्ष से व्याप्त होता है। स्वरूप साक्षात्कार होने की यही पहिचान है।

ज्योतींषि यद्दिवि चरन्ति यदन्तरिक्षं
सूते पयांसि यदहिर्धरणीं च धत्ते।
यद्वाति वायुरनलो यदुदर्चिरास्ते
तत्सर्वमम्ब! तव केवलमाज्ञयैव ।।२१।।

(अन्वय)

अम्ब! यत् ज्योतींषि दिवि चरन्ति,यत् अन्तरिक्षं पयांसिसूते, यत् च अहिः धरणीं धत्ते, यत् वायुः वाति यत् (च) अनलः उदर्चिः आस्ते – तत्सर्वं तव आज्ञयैव स्यात् ।।२१।।

(अर्थ)

हे माता! ये जो सितारे आकाश-मार्ग में इधर उधर घूमते फिरते हैं, जो यह अन्तरिक्ष-तल वर्षा बहा देता है, जो यह शेष-नाग इस समस्त पृथ्वी को धारण किए हुए है, जो यह वायु इधर उधर चलता रहता है और जो यह अग्नि ऊर्ध्व-मार्ग से चलती हुई दिखाई देती है – यह सभी कुछ तो आप की आज्ञा से ही होता है ।।२१।।

संकोचमिच्छसि यदा गिरिजे! तदानीं
वाक्तर्कयोस्त्वमसि भूमिरनामरूपा।
यद्वा विकासमुपयासि यदा तदानीं
त्वन्नामरूपगणनाः सुकरीभवन्ति ।।२२।।

(अन्वय)

गिरिजे! यदा (त्वं) संकोचमिच्छसि, तदानीं वाक्तर्कयोः अनामरूपा भूमिः असि। यद्वा यदा त्वं विकासमुपयासि तदानीं त्वन्नामरूपगणना सुकरी भवन्ति ।।२२।।

(अर्थ)

हे पार्वती! जब आप अपने स्वरूप का संकोच करना चाहती हैं, तब आप का स्वरूप नाम-रूप की कलना से अतीत बन कर अनुलेख्य हो जाता है। साथ

ही वह स्वरूप वाणी तथा मन का विषय बनकर उससे दूर बहुत दूर चला जाता है। इसके उलट जब आप अपनी स्वरूप-विकासात्मक अवस्था को ग्रहण करती हैं, तो उस दशा में ध्यान करने से भक्त-जन आप के स्वरूप को सहज ही प्राप्त करते हैं ।।२२।।*

भोगाय देवि भवतीं कृतिनः प्रणम्य
भ्रूकिंकरीकृतसरोजगृहा सहस्राः ।
चिन्तामणिप्रचयकल्पितकेलिशैले
कल्पद्रुमोपवन एव चिरं रमन्ते ।।२३।।

(अन्वय)

देवि! कृतिनः भवतीं भोगाय प्रणम्य भ्रूकिंकरीकृतसरोज- गृहाःसहस्राः (सन्तः) चिन्तामणि प्रचयकल्पितकेलिशैले कल्पद्रुम-उपवने एव चिरं रमन्ते ।।२३।।

(अर्थ)

जो भाग्यशाली जन, भोग अर्थात् सांसारिक ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए ही आप को प्रणाम करते हैं वे फलतः हजारों लक्ष्मियों को अपने नेत्रों के इशारों से ही अपनी दासियां बना देते हैं। इस के अतिरिक्त चिन्तामणि-रत्नों के ढेर से बनाये हुए पर्वत पर, जो उन के लिए क्रीडास्थल के रूप में निर्मित हुआ होता है, वे ऐसे ही पर्वत के कल्प-वृक्षों से प्रपूरित वन-स्थली में अनन्त समय के लिए रमण करते हैं अर्थात् वहीं रहते हैं। भाव यह है कि जो भक्त सांसारिक ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए भी आप की उपासना करते हैं उन्हें भी आप अपने असाधारण एवं अलौकिक ऐश्वर्य को प्रदान करती हैं ।।२३।।

हन्तुं त्वमेव भवसि त्वदधीनमीशे
संसारतापमखिलं दयया पशूनाम् ।
वैकर्तनीकिरणसंहतिरेव शक्ता
धर्मं निजं शमयितुं निजयैव वृष्ट्या ।।२४।।

---

* आप की स्वरूप-संकोचात्मिका दशा निराकाररूपता कहलाती है और आप की स्वरूप-विकास-रूप दशा साकाररूपता कही जाती है ।।२२।।

(अन्वय)

ईशे! पशूनाम् अखिलं संसार-तापं त्वदधीनम् (अस्ति) (अत एव तं) दयया हन्तुम् (अपि) त्वमेव (समर्था) भवसि (यथा) वैकर्तनी-किरणसंहातिरेव निजं धर्मं शमयितुं निजया एव वृष्टया शक्ता (भवति) ।।२४।।

(अर्थ)

हे जगत का शासन करने वाली देवी! सांसारिक मनुष्यों के सभी सन्ताप अर्थात् आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक दुःख आप के ही अधीन हैं अर्थात् आप ही उन दुःखों को उत्पन्न करती हैं — इत्यतः उन सांसारिक व्यक्तियों पर दया करके वे दुःख नष्ट करने में आप ही समर्थ हैं। जैसे सूर्य-भगवान् की किरणों का समूह गर्मी को उत्पन्न करता है और फिर से वर्षा-रूप में परिणत होकर एक बारगी उसे शान्त कर देता है।

शक्तिः शरीरमधिदैवतमन्तरात्मा
ज्ञानं क्रिया करणमासनजालमिच्छा।
ऐश्वर्यमायतनमावरणानि च त्वं
किं तन्न यद्भवसि देवि! शशांकमौलेः।।२५।।

(अन्वय)

शशांकमौलेः देवि! त्वं शक्तिः, शरीरम्, अधिदैवतम्, अन्तरात्मा, ज्ञानं, क्रिया, करणम्, आसनजालम्, इच्छा, ऐश्वर्यम्, आयतनम् च आवरणानि असि। तत्किं (अस्ति) यत् (त्वं) न भवसि ।।२५।।

(अर्थ)

हे चन्द्रकलाधारी भगवान् शंकर की शक्ति भगवती! आप ही परा, परापरा और अपरा शक्ति हैं। स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीर भी आप ही हैं। अधिदैव अर्थात् शरीर में ठहरा हुआ परमात्मा का स्वरूप तथा उस शरीर में स्थित जीवात्मा का स्वरूप आप ही हैं। आप ही ज्ञानशक्ति, क्रिया-शक्ति, तथा इन्द्रियों का समूह भी हैं। परदशा में जो आप का आसन ईश्वर प्रेत-रूपता में ठहरा है, वह भी आप ही हैं। इच्छा-शक्ति, सर्वज्ञतादि ऐश्वर्य तथा तीन आणव-मल इत्यादि आवरण भी आप ही हैं, इसके अतिरिक्त आयतन परमेश्वर का निवासस्थान (मन्दिर) भी आप ही हैं। भाव यह है कि वह कौन सी वस्तु है जो आप नहीं हैं।

भूमौ निवृत्तिरुदिता पयसि प्रतिष्ठा
विद्यानले मरुति *शांतिरतीतशान्तिः ।
व्योम्नीति याः किल कलाः कलयन्ति विश्वं
तासां विदूरतरमम्ब! पदं त्वदीयम् ।।२६।।

(अन्वय)

हे अम्ब! भूमौ निवृत्तिरुदिता, पयसि प्रतिष्ठा, अनले विद्या, मरुति *शान्तिः व्योम्निअतीतशान्तिः। इत्येवम् याःकिल कलाः विश्वं कलयन्ति, तासां विदूरतरम् (एव) त्वदीयं पदम् ।।२६।।

(अर्थ)

हे माता! आप पृथ्वी में निवृत्ति-कला, जल-तत्त्व में प्रतिष्ठा-कला, अग्नि तत्त्व में विद्या-कला, वायु-तत्त्व में शान्ता-कला और आकाश-तत्त्व में शान्तातीता-कला उदित हुई हैं– इस प्रकार जो ये उपर्युक्त पांच कलाएं छतीस-तत्त्व रूप जगत का निर्माण करती हैं, उन समस्त कलाओं से परे आप का स्वरूप है अर्थात् आप का स्थान सर्वोत्कृष्ट है ।।२६।।

यावत्पदं पदसरोजयुगं त्वदीयं
नाङ्गीकरोति हृदयेषु जगच्छरण्ये।
तावद्विकल्पजटिलाः कुटिलप्रकारा-
स्तर्कग्रहाः समयिनां प्रलयं न यांति ।।२७।।

(अन्वय)

जगच्छरण्ये! यावत् त्वदीयं पदसरोजयुग पदं हृदयेषु न अंगीकरोति, तावत् समयिनां विकल्पजटिलाः कुटिलप्रकाराः तर्कग्रहाः प्रलयं न यान्ति ।।२७।।

---

* तन्त्रालोक में इन कलाओं का प्रदर्शन इस रीति से किया है–

निवृत्तिः पृथ्वीतत्त्वे प्रतिष्ठाव्यक्तगोचरे।
विद्या निशान्ते शान्ता च शक्त्यन्तेऽण्डमिदं चतुः।
शान्तातीता शिवे तत्त्वे कलातीतः परः शिवः ।।

(अर्थ)

हे जगत को अपने स्वरूप में शरण देने वाली माता! जब तक आप के प्रकाशविमर्शात्मक चरण-कमल-युगल को अपने हृदय में स्थान नहीं दिया जाता है तब तक समस्त मतवादी-जनों के संकल्प-विकल्प से दुरुह, कठिन बने हुए तथा दुष्ट अर्थात् कुतर्क-वितर्क से युक्त परस्पर वाद-विवाद करने की टेंव (आदत) समाप्त नहीं होती। भाव यह है कि जब तक साधक को स्वरूप-लाभात्मक आनन्द की प्राप्ति नहीं होती, तब तक वह वाद-विवाद के झमेले में पड़ा रहता है। जब साधक को साक्षात्कार का लाभ होता है तो फिर उसे मौन में ही प्रत्येक निधि छिपी रहती है ।।२७।।*

यद्देवयानपितृयानविहारमेके
कृत्वा मनःकरणमण्डलसार्वभौमम्।
याने निवेश्य तव कारणपञ्चकस्य
पर्वाणि पार्वति नयन्ति निजासनत्वम् ।।२८।।

(अन्वय)

पार्वति! एके यत् = (यदा) देवयानपितृयानविहारं कृत्वा करणमण्डल सार्वभौमं मनः तव याने निवेश्य कारणपंचकस्य पर्वाणि निज-आसनत्वं नयन्ति ।।२८।।

(अर्थ)

हे पार्वती! कई विरले भक्त-जन देवयान अर्थात् उत्तरायण रूपी अपान-गति तथा दक्षिणायन अर्थात् प्राण-गति— दोनों को काट कर, इन्द्रिय-मण्डल के सम्राट बने हुए मन को आपके (गति-विहीन सुषुम्ना-धाम) रूप मार्ग में लय करते हैं। ऐसा करने पर वे पांच कारणों अर्थात् ब्रहमा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर तथा सदाशिव के मुकुटों को अपना आसन बना देते हैं। तात्पर्य यह है कि जो परमयोगी प्राणापान की गति को रोक कर सुषुम्ना-मार्ग में प्रविष्ट होते हैं, वे ब्रह्मा आदि पांच कारणों के स्थान को भी तुच्छ समझते हैं और साथ ही सृष्टयादि पांच कृत्यों के नायक बन कर परमोत्कृष्ट शिवधाम को प्राप्त करते हैं ।।२८।।

---

* कहा भी है —

"विजानन् विद्वान् भवते नातिवादी"

स्थूलासु मूर्तिषु महीप्रमुखासु मूर्तेः
कस्याश्चनापि तव वैभवमम्ब यस्याः ।
पत्या गिरामपि न शक्यत एव वक्तुं
सासि स्तुता किल मयेति तितिक्षितव्यम् ।।२९।।

(अन्वय)

अम्ब! तव महीप्रमुखासु स्थूलासु मूर्तिषु (मध्यात्) यस्याः कस्याश्चनापि मूर्तेः वैभवं गिरामपि पत्या वक्तुं न शक्यते एव, सा (त्वं) मया स्तुता असि-इति तितिक्षितव्यम् ।।

(अर्थ)

हे माता! पृथ्वी इत्यादि जो आप का स्थूल स्वरूप है, उस में से किसी एक स्वरूप के विभव का निर्णय बृहस्पति-पाद भी करने में असमर्थ हैं, उसी आप के स्वरूप के ऐश्वर्य का गुण-गान (मैं अल्पज्ञ मूर्ख) करने का साहस कर रहा हूं अर्थात् आप के पारमार्थिक स्वरूप की स्तुति कर रहा हूं – अतः इस मेरी दृष्टता पर आप महानुभाव-स्वभाव वाली माता क्षमा करेंगी– यह मेरी आशा है ।।२९।।

कालाग्निकोटिरुचिमम्ब षडध्वशुद्धा
वाप्लावनेषु भवतीममृतौघवृष्टिम् ।
श्यामां घनस्तनतटां सकलीकृतौ च
ध्यायन्त एव जगतां गुरवो भवन्ति ।।३०।।

(अन्वय)

अम्ब! षडध्वशुद्धौ कालाग्निकोटिरुचिम्(इव) षडध्वनः आप्लावनेषु अमृतौघवृष्टिमिव, च (षडध्वनः) सकलीकृतौ घनस्तनतटां श्यामां भवतीं ध्यायन्तः एव जगतां गुरवो भवन्ति ।।३०।।

(अर्थ)

हे माता! कलाध्वा, तत्त्वाध्वा, भुवनाध्वा, वर्णाध्वा, मन्त्राध्वा और पदाध्वा – इन छैः-स्वरूप वाले संसार को शुद्ध करने में अर्थात् स्वरूपविश्रान्त्यात्मक

संहार करने में जो भक्त-जन आपके स्वरूप का ध्यान करोडों कालाग्निरुद्रों के समान बना हुआ करते हैं तथा समस्त संसारमण्डल का आप्लावन करने में आप का स्वरूप अमृत-पूर्ण वर्षा की तरह देखते हैं तथा इस जगत्-मण्डल का सृजन करने में आप के स्वरूप को कृष्ण-वर्ण से युक्त एवं बोझिल बने हुए स्तनों अर्थात् ज्ञान-क्रिया शक्ति के विकास से युक्त बना हुआ ध्यान करते हैं, वे जन तत्काल ही तीनों लोकों के गुरु बन जाते हैं अर्थात् तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करते हैं ।।३०।।

विद्यां परां कतिचिदम्बरमम्ब केचित्।
आनन्दमेव कतिचित् कतिचिच्च मायाम्।
त्वां विश्वमाहुरपरे वयमामनाम
साक्षादपारकरूणां गुरुमूर्तिमेव ।।३१।।

(अन्वय)

हे अम्ब! त्वां कतिचित् परां विद्यां, केचित् अम्बरम्, कतिचित् आनन्दमेव, कतिचित् माया, च अपरे विश्वम् आहुः । वयं (तु त्वां) अपारकरुणां साक्षात् गुरुमूर्तिमेव आमनाम ।।३१।।

(अर्थ)

हे माता! कोई तो आप को विद्या का स्वरूप मानते हैं। कई आकाश अर्थात् शून्य-स्वरूप मानते हैं। कुछ लोग आप को आनन्द-स्वरूप ही मानते हैं। कई माया का स्वरूप मानते हैं और कई जन विश्वाकार आप को बतलाते हैं। हम तो आपके स्वरूप को अनन्त-करुणा-पूर्ण साक्षात् गुरु-रूप ही मानते हैं ।।३१।।*

कुवलयदलनीलं बर्बरस्निग्धकेशं
पृथुतरकुचभाराक्रान्तकान्तावलग्नम् ।
किमिह बहुभिरुक्तैस्त्वत्स्वरूपं परं नः
सकलभुवनमातः सन्ततं सन्निधत्ताम् ।।३२।।

---

* कहा भी है –

'गुरुर्वा पारमेश्वरी अनुग्राहिका शक्तिः'
अर्थात् परा पारमेश्वरी अनुग्रहमयी देवी ही गुरु है।

(अन्वय)

हे सकलभुवनमातः ! त्वत्-परं-स्वरूपं कुवलयदलनीलं, बर्बर-स्निग्ध-केशं, पृथुतर-कुचभार-आक्रान्त-कान्त अवलग्नम् (अस्ति)। इह बहुभिरुक्तैः किम्? (त्वत्स्वरूपं) नः सन्ततं सन्निधत्ताम् ।।३२।।

(अर्थ)

हे समस्त भुवनों की माता! आप का स्वरूप कुवलय नामी पुष्पों के पत्ते के समान नीला तथा भूरे चिकने केशों से युक्त है। इस के अतिरिक्त ज्ञान-क्रिया रूपी स्तनों की फैलावट से युक्त आप का सुन्दर वक्षस्थल से सुशोभित शरीर, महादेव के शरीर के साथ सदैव लगा रहता है। ज़्यादा कहने से इस समय क्या लाभ है— आप का यह स्वरूप हमें सदा के लिए प्रकट रहे ।।३२।।*

इति अम्बास्तवः
चतुर्थः समाप्तः

---

* इस श्लोक में भुवन-शब्द में तीनों जाग्रदादि अवस्थाओं की ओर संकेत है। बर्बर-केशों से उस पराशक्ति की अनन्त शक्तियों की ओर संकेत है अर्थात् पराशक्ति सदैव अपने शक्तिचक्रों से युक्त रहती है।

ओं

अथ सकलजननीस्तवः पंचमः

अजानन्तो यान्ति क्षयमवशमन्योन्यकल है–
रमी मायाग्रन्थौ तव परिलुठन्तः समयिनः ।
जगन्मातर्जन्मज्वरभयतमः कौमुदि! वयं
नमस्ते कुर्वाणाः शरणमुपयामो भगवतीम् ।।१।।

(अन्वय)

हे जगन्मातः ! हे जन्मज्वरभयतमः कौमुदि! (त्वत्स्वरूपम्)अजानन्तः अमी समयिनः अन्योन्यकलहैः अवशम् क्षयं यान्ति। (यतस्ते) तव मायाग्रन्थौ परिलुठन्तः । वयं तु ते भगवतीम् नमस्कुर्वाणाः शरणमुपयामः ।।१।।

(अर्थ)

जन्म-ज्वर-भय और अन्धकार को नष्ट करने में चन्द्रमा के प्रकाश के समान बनी हुई हे जगन्माता! वाद-विवाद करने वाले जो व्यक्ति आप के पारमार्थिक संवित्स्वरूप को नहीं जानते, वे आप के 'माया-ग्रन्थि' नामक जाल में फंस कर (इधर-उधर) लुढ़कते रहते हैं। इस प्रकार के पारस्परिक (वाद-विवाद रूपी) झगडे से वे अवश्य नष्ट हो जाते हैं, अर्थात् भेदभावनात्मक बुद्धि से वे अपने स्वरूप को प्राप्त करने से वंचित रहते हैं। हम तो उन के इस कलह रूपी जाल में न फंस कर आप भगवती को (शरीर से, वाणी से और मन से) नमस्कार करते हैं और आप के स्वरूप में सदा के लिए समाविष्ट होते हैं ।।१।।

वचस्तर्कागम्यस्वरसपरमानन्दविभव–
प्रबोधाकाराय द्युतिदलितनीलोत्पलरुचे।
शिवस्याराध्याय स्तनभरविनम्राय सततं
नमो यस्मै कस्मैचन भवतु मुग्धाय महसे ।।२।।

(अन्वय)

वचस्तर्कागम्यस्वरसपरमानन्दविभवप्रबोधाकाराय द्युतिदलितनीलोत्पलरुचे स्तनभरविनम्राय शिवस्य आराध्याय यस्मै कस्मैचन मुग्धाय महसे नमः ।।२।।

(अर्थ)

आप के उस अत्यन्त सुन्दर अत्यन्त अलौकिक तेज को नमस्कार हो, जो वाणी और तर्क से जाना नहीं जाता, जिसका स्वरूप स्वानुभव-गम्य परमानन्दात्मक ऐश्वर्य को सजग बनाता है, जो अपनी संविद्-रश्मियों से ही नील-पीत आदि समस्त वस्तु-वर्ग को विकसित करता है जैसे सूर्य-प्रकाश से उत्पल-पुष्प विकसित होते हैं, जो प्रकाश ज्ञान-क्रियात्मक स्तनों के गौरव से विनम्र है अर्थात् सदैव विश्वमयरूपता को प्रकट करता है और जिस परम-तेज की आराधना भगवान् शंकर करते रहते हैं।।२।।*

लुठद्गुञ्जाहारस्तनभरनमन्मध्यलतिका–
मुदञ्चद्धर्माम्भः कणगुणितनीलोत्पलरुचम् ।
शिवं पार्थत्राणप्रवणमृगयाकारगुणितं
शिवामन्वग्यान्तीं शवरमहमन्वेमि शवरीम् ।।३।।

(अन्वय)

उदञ्चद्धर्माम्भः कणगुणितनीलोत्पलरुचम् – पार्थत्राणप्रवणमृगयाकारगुणितं शवरं शिवम् अन्वग्यान्तीं लुठद्गुञ्जाहारस्तनभरनमन्मध्यलतिकां शवरीं शिवाम् अहम् अन्वेमि ।।३।।

(अर्थ)

इन्द्रकीलगिरि पर पाशुपत-अस्त्र-प्राप्ति के लिए तपस्या करते हुए अर्जुन की रक्षा करने के हेतु आखेट-क्रिया करते हुए शिकारी का रूप शिवजी ने धारण किया था, अत एव शिवजी के शरीर से उष्ण २ स्वेद-कण निकलते

---

* ब्रह्माण्डपुराण में कहा भी है –

'शिवोऽपि यां समाराध्य ध्यान योग बलेन च ।
ईश्वरः सर्वसिद्धीनामर्धनारीश्वरोऽभवत् ।।'

थे मानों उस के नील-रंग वाले शरीर पर वे स्वेद-कण नील-कमल के समान चमकते थे। ऐसे ही शिकारी का रूप धारण करते हुए शिव के पीछे पीछे शिकारिन का रूप धारण करती हुई पार्वती जी दौड़ती चली जाती थीं जिस पार्वती जी को दौड़ने के कारण घुंघचियों की माला वक्षस्थल पर हिलती हुई इधर उधर वक्षस्थल के दोनों ओर से डुलकती थी, और उस के वक्षस्थल के भार भोज से उस की कमर झुकी हुई थी – ऐसी ही रूप वाली शिकारिन पार्वती जी की शरण, मैं लेता हूं - अर्थात् उस में समावेश करता हूं ।।३।।

मिथः केशाकेशिप्रधननिधनास्तर्कघटना
बहुश्रद्धाभक्ति प्रवणविषया श्चाप्तविधयः ।
प्रसीद प्रत्यक्षीभव गिरिसुते! देहि शरणं
निरालम्बं चेतः परिलुठति पारिप्लवमिदम् ।।४।।

(अन्वय)

तर्कघटनाः मिथः केशाकेशिप्रधननिधनाः, आप्तविधयः च बहुश्रद्धा-भक्तिप्रवणविषयाः । हे गिरिसुते! प्रसीद, प्रत्यक्षीभव, शरणं देहि। (यतः) इदम् (अस्माकं) चेतः निरालम्बं (सत्) पारिप्लवं परिलुठति ।।४।।

(अर्थ)

तार्किक सिद्धान्तियों के पारस्परिक बाद-विवाद रूपी प्रधन (युद्ध) अन्त में उन्हें कुछ प्राप्त न होकर आयु की समाप्ति ही करवाता है। स्वरूप-साक्षात्कार-संपन्न आप्तपुरुषों के शास्त्र तो बहुत ही श्रद्धा तथा भक्ति की शक्ति पर निर्भर हैं। मैं तो उपर्युक्त दोनों बातें करने का साहस नहीं रखता हूं। अतः हे गिरिजे! मुझ पर आप प्रसन्न बनिये, अर्थात् अनुग्रह कीजिये, उस के पश्चात् मेरे नेत्रों का विषय बनिये और फिर मेरी संपूर्ण रक्षा कीजिये, क्योंकि संकल्प-विकल्प-रूपी उपद्रवों से युक्त बना हुआ मेरा आश्रय-हीन मन लुढकता रहता है अर्थात् स्वरूपविश्रांति प्राप्त करने से वञ्चित रहता है ।।४।।

शुनां वा वह्नेर्वा खगपरिषदो वा यदशनं
कदा केन क्वेति क्वचिदपि न कश्चित् कलयति।
अमुष्मिन् विश्वासं विजहिहिममाह्नाय वपुषि
प्रपद्येथाश्चेतः सकलजननीमेव शरणम् ।।५।।

(अन्वय)

हे मम चेतः ! यत् (वपुः) शुनांवा, वह्नेर्वा, खगपरिषदः वा अशनम्। इति कश्चिद्पि कदा, केन, क्व, क्वचित, न कलयति ।
(इत्यतः त्वं) अमुष्मिन् वपुषि विश्वासम् अह्वा विजहिहि तथा अह्नाय सकलजननीम् एव शरणं प्रपद्येथाः ।।५।।

(अर्थ)

हे मेरे मन! न जाने कब, किस के कारण, कहां पर और किस अवस्था में यह शरीर, कुत्तों का, श्मशान- अग्नि का, पक्षियों के समूह का ग्रास अर्थात् भोजन बनेगा, इस का अनुमान कोई भी नहीं लगा सकता। अतः इस मेरे शरीर का (अहम्-अभिमानात्मक) विश्वास जल्दी छोड़ कर समस्त संसार की जननी परा पारमेश्वरी शक्ति भगवती की ही शरण ग्रहण कर ।।५।।

अनाद्यन्ताभेदप्रणयरसिकापि प्रणयिनी
शिवस्यासीर्यत्त्वं परिणयविधौ देवि! गृहिणी।
सवित्री भूतानामपि यदुदभूः शैलतनया
तदेतत् संसार प्रणयनमहानाटकसुखम् ।।६।।

(अन्वय)

हे देवि! (हिमालयालये जन्मग्रहणपूर्वं) परिणयविधौ प्रणयिनी ग्रह्णिणी आसीः । भूतानां सवित्री अपि यत् (त्वं) शैलतनया उदभूः । तदेतत् संसारप्रणयनमहानाटकसुखम् ।।६।।

(अर्थ)

हे देवि! अनुत्तर परमशिव के साथ अभिन्न होने से आप आदि और अन्त से रहित अभेदात्मक प्रेम में रसिक होकर भी, हिमालय के घर में जन्म लेने से

पूर्व, पाणि-ग्रहण के समय भगवान् शंकर जी की अर्धांगिनी बनीं। इस के अतिरिक्त सकलादि समस्त प्राणियों को उत्पन्न करने वाली होकर भी, जो आप हिमालय पर्वत की कन्या बनकर प्रकट हुईं, अर्थात् जगतजननी होकर भी आप हिमालय की पुत्री बन गईं। इस प्रकार का वैषम्य देख कर यही अनुमान लगाया जाता है कि आप का शिव के साथ पाणि-ग्रहण करके गृहिणी बनना तथा हिमालय के घर जन्म लेना एक विनोदमय शृङ्गाररसपूर्ण नाटक-सुख ही है अर्थात् जन्मग्रहण तथा दम्पतीभाव का संपादन रूप संसार, एक आप की सुखमय लीला है ।।६।।

ब्रुवन्त्येके तत्त्वं भगवति! सदन्ये विदुरसत्।
परे मातः! प्राहुस्तव सदसदन्ये सुकवयः।
परे नैतत्सर्वं समभिदधते देवि! सुधियः
स्तदेतत् त्वन्माया विलसितमशेषं ननुशिवे! ।।७।।

(अन्वय)

हे भगवति! एके (तव) तत्त्वं सत् ब्रुवन्ति, अन्ये असत् – इति विदुः। हे परे मातः! अन्ये सुकवयः तव सदसत् प्राहुः। हे देवि! ननु तदेतत् अशेषं त्वन्माया - विलसितम् (अस्ति)।।७।।

(अर्थ)

हे स्वातन्त्र्यशालिनि देवि! कई बुद्धिमान् जन आप के स्वरूप को सत् रूप और कई असत् - स्वरूप अर्थात् वाणी तथा मन का विषय न होने के फल - स्वरूप शून्यात्मक कहते हैं। हे परा - शक्ति - रूप माता ! कई विद्वान् जन आप का स्वरूप सदसदुभयात्मक कहते हैं, यानी आप का स्वरूप साकार रूप भी है और निराकाररूप भी है। इस के अतिरिक्त कई ज्ञानी - जन कहते हैं कि तत्त्वदृष्टि से यह कुछ ही नहीं है अर्थात् आप का स्वरूप अनुलेख्य होने से न सत् है, न असत् है और न सदसद्रूप है। इस से मुझे यह अनुमान होता है कि हे पार्वती जी! यह ऊपर-वर्णित आप के सभी लक्षण आप की अप्रतिहता स्वातंत्र्य - शक्ति की केवल क्रीड़ा है और कुछ नही।।७।।

तडित्कोटिज्योतिर्द्युतिदलितषड्ग्रन्थिगहनं
प्रविष्टं स्वाधारं पुनरपि सुधावृष्टिवपुषा।
किमप्यष्टात्रिंशत्किरण सकली भूतमनिशं
भजे धाम श्यामं कुच भरनतं बर्बर कच्यम्।।८।।

(अन्वय)

(अहं) तडित्कोटि ज्योति र्द्युतिदलितषड् गन्थि गहन, पुनरपि सुधावृष्टि वपुषा स्वाधारं प्रविष्ट, अष्टात्रिं शत्किरणसकली भूतं, कुचभरनतं, बर्बरकचम् किमपि श्यामं धाम अनिशं भजे।।८।।

(अर्थ)

जो तेज, अपने करोड़ों बिजलियों के प्रकाश की कान्ति से (सभी) छैः चक्रों का वेधन करता है, तथा परमानन्द रूपी अमृतवर्षा-से युक्त ऊर्ध्वकुण्डलिनी का स्वरूप धारण करके फिर से अपने आधार अर्थात् मूलाधार - स्थान में प्रवेश करता है - इस प्रकार जिस तेज ने अठतीस किरणों को सोम, सूर्य तथा अग्नि – इन तीन प्रकाशों की अठतीस कलाओं को अपने स्वरूप में लीन किया है और इसीलिए इन तीनतेजों की संघटनात्मक अवस्था धारण करने के फल स्वरूप जो तेज, श्याम - वर्ण वाला बन गया है, तथा ज्ञान क्रिया रूपी स्तनों के विमर्शनात्मक भोज से जो तेज जगदानन्द रूपी अवस्था की ओर झुका हुआ है, एवं इस रीति से जिस तेज ने अपने अनन्त विश्व - व्यापी शक्ति - चक्र को विकसित किया है उसी अलौकिक परम - धामात्मक तेज की मैं बन्दना करता हूं अर्थात् उस में सदा के लिए समाविष्ट होता हूं।।८।।*

टिप्पणीः– सोम, सूर्य और अग्नि की अठतीस कलायें ये हैं – सोम की सोलह कलाएं (अमृता, मानदा, पूषा, पुष्टिः, प्रीतिः, रेवती, ह्रीमती, श्री, कान्तिः, सुधा, ज्योत्स्ना, हैमवती, छाया, संपूरिणी, रामा और श्यामा) सूर्य की बारह कलाएं (तपिनी, तापिनी, शोधनी, शोषणी, भ्रामणी, क्लेदिनी, वरेण्या, आकर्षिणी, सुषुम्णा, वृष्टिवाहा, ज्येष्ठा और हिरण्यदा) अग्नि की दस कलाएं – (धूम्रार्चिः, नीलरक्ता, कपिला, विस्फुलिंगिनी, ज्वालामालिनी, अर्चिष्मती, हव्यवाहिनी, कव्यवाहा, रौद्री और संहारिणी) इन अठतीस कलाओं के लक्षण विस्तार - भय से नहीं किये जाते हैं। कहा भी है –

* भेद भावक मायीयतेजोऽश ग्रसनाचच्लत्।
सर्व संहारकत्वेन कृष्णं तिमिररूपधृत्।।

अर्थात् भेद परामर्श करने वाले सभी माया - मय सूर्य आदि तेजों का ग्रास करने से वह अमायीय पर प्रकाशात्मक तेज कृष्णा - वर्ण वाला है।

चतुष्पत्रान्तः षड्दलभगपुटान्त स्त्रिवलय -
स्फुरद्विद्युद्व ह्नी द्युमणिनियुताभद्युतियुते।
षडश्रं भित्त्वादौ दशदलमथ द्वादशदलं
कलाश्रं च द्वयश्रं गतवति नमस्ते गिरिसुते।।९।।

(अन्वय)

चतुष्पत्रान्तः— षड्दलभगपुटान्तः— त्रिवलय - स्फुरद् विद्युद्वह्निद्युमणि-नियुताभद्युतियुते (हे मातः!) आदौ षडश्रं भित्त्वा अथ दशदलम् अथ द्वादशदलं कलाश्रं च (भित्वा) द्वयश्रं गतवति हे गिरि सुते! ते नमः।।९।।

(अर्थ)

हे कुण्डलिनी - शक्ति - स्वरूप वाली भगवती ! (आप) चार पत्तों वाले कमल - स्थान मूलाधार - में अवस्थित षड्दल अर्थात् षडाकार भगपुट (षट्कोण) में साढे तीन वलयों (घेरों) में मुडी हुई होकर देदीप्यमान् बनी हुई हैं। उस सुप्तावस्था में आप दस लाख बिज़ली, अग्नि तथा सूर्य - प्रकाश के समान चमकती हुई ठहरी हैं। वहां आप अपने कुण्डलिनी - स्वरूप को उत्थान करने के लिए प्रथम स्वादिष्ठान षड्दलात्मक कमल को नादात्मक शूल से काट कर, उस के पश्चात् मणिपूर नाम वाले दशदल - स्वरूप कमल को, फिर अनाहत चक्र वाले द्वादश कमल को तत्पश्चात् विशुद्ध - चक्रात्मक षोडशदल रूपी कमल का भेदन करके अन्त में आज्ञाचक्रस्थान के द्विदलात्मक कमल में प्रवेश करती हैं -- उसी द्विदलात्मक आज्ञा - चक्र में ठहरी हुई आप को मैं प्रणाम करता हूँ उसी आप की उच्चतम अवस्था में समावेश करता हूं।।९।।

कुलं केचित्प्राहुर्वपुरकुलमन्ये तव बुधाः
परे तत्संभेदं समभिदधते कौलमपरे।
चतुर्णामप्येषामुपरि किमपि प्राहुरपरे
महामाये! तत्त्वं तव कथममी निश्चिनुमहे।।१०।।

(अन्वय)

महामाये! केचित् तव वपुः कुलं प्राहुः, अन्ये बुधाः अकुलं (प्राहुः)। परे

तत्संभेदं समभिदधते। अपरे एषां चतुर्णामपि उपरि किमपि तव स्वरूपं प्राहुः। अतः अमी वयं कथं तव तत्त्वं निश्चिनुमहे।।१०।।

(अर्थ)

हे स्वातंत्र्यशक्तिशालिनी महामाया भगवती! कई कुलामान्य - वादी आप के स्वरूप को कुल अर्थात् पारमेश्वरी शक्ति कहते हैं। अन्य विद्वान् तांत्रिकसंप्रदाय - शाली आप को अकुल अर्थात् शिव के नाम से पुकारते हैं। अन्य त्रिक - आदि दर्शन - वादी आप का स्वरूप उभयात्मक कुलाकुल रूप अर्थात् शिव - शक्ति - सामरस्यात्मक कहते हैं और कई प्रत्यभिज्ञादर्शन - वादी आप को कौल - नाम की उपाधि से विभूषित करते हैं। अन्य विद्वान तो इन उपर्युक्त चारों स्वरूपों से उत्तीर्ण आप को अनाख्य - स्वरूप ही कहते हैं। हे माता! आप ही बताइये कि ये हम सभी आप के स्वरूप का निश्चय किस रूप से करेंगे।।१०।।

षडध्वारण्यानीं प्रलय रविकोटिप्रतिरुचा
रूचा भस्मी कृत्य स्वपदकमल प्रह्वशिरसाम्।
वितन्वानः शैवं किमपि वपुरिन्दीवररूचिः
कुचाभ्यामानम्रः शिव पुरुषकारो विजयते।।११।।

(अन्वय)

स्वपदकमलप्रह्वशिरसां प्रलय रवि कोटि प्रतिरूचा षडध्व - अरण्यानीं भस्मीकृत्य, किमपि शैवं वपुः वितन्वानः कुचाभ्यामानम्रः इन्दीवररुचिः शिवपुरुषकारः विजयते।।११।।

(अर्थ)

प्रलयकालीन करोडों सूर्यों के समान दीप्ति से षडध्वा रूपी अर्थात् वर्णाध्वा, मन्त्राध्वा, पदाध्वा, कलाध्वा, तत्त्वाध्वा और भुवनाध्वा, अथवा मूलाधार, नाभि, हृदय, कंठ, भ्रूमध्य और सहस्रार — इन छैः प्रकार से बने हुए घने जंगल को जला कर अर्थात् भस्म करके अपने प्रकाश विमर्श मय परमधाम में तद्रूप बने हुए योगियों को (भक्त - जनों को) सर्वोत्तीर्ण अलौकिक परमशिव - धामात्मक स्वरूप दिखाते हुए भैरवात्मक शिव पुरूषकार की जय हो, जो भैरव - परूषार्थ संकोच विकास -शील होने से नील - उत्पल के

समान है और ज्ञानशक्ति तथा क्रियाशक्ति की प्रचुरता से अपने शिवात्मक स्थान से पृथ्वीतत्त्व - तक नम्र अर्थात् फैला हुआ है।।११।।

प्रकाशानन्दाभ्यामविदित चरीं मध्यपदवीं
प्रविश्यैतद्द्वन्दं रविशशिसमाख्यं कवलयन्।
प्रविश्योर्ध्वं नादं लयदहन भस्मीकृतकुलः
प्रसादात्ते जन्तुः शिवमकुलमम्ब! प्रविशति।।१२।।

(अन्वय)

अम्ब! एतत् रविशशिसमाख्यं द्वन्द्वं कवलयन् जन्तुः प्रकाशानन्दाभ्यामविदित चरीं मध्यपदवीं प्रविश्य लयदहन भस्मीकृतकुलः ऊर्ध्वं नादं प्रविष्य ते प्रसादात् अकुलं शिवं प्रविशति।।१२।।

(अर्थ)

हे पराकुण्डलिनी रूप माता! जब कोई भाग्यशाली भक्त इस सूर्य सोमात्मक प्राणापान रूपी द्वन्द का ग्रास करता हुआ अनन्त काल से अविदित मध्य - धाम अर्थात् सुषुम्ना - मार्ग में प्रकाश तथा विमर्श का आश्रय लेकर प्रवेश करता है और इसी प्रकार चित्त - प्रलय रूपी अग्नि से अर्थात् हठ पाक प्रशम धारणा से समस्त भेद- प्रथात्मक जगत का संहार करके ऊर्ध्वकुण्डलिनी की पदवी में प्रवेश करता है तो फिर आप के तीव्रातितीव्र अनुग्रह शक्ति से वह व्यक्ति सदा के लिए परमशिवात्मक अकुल - धाम में प्रवेश करता है।।१२।।

मनुष्यास्तिर्यञ्चो मरुत इति लोकत्रयमिदं
भवाम्भोधौ मग्नं त्रिगुणलहरी कोटिलुठितम्।
कटाक्षश्चेदत्र क्वचन तव मातः! करुणया
शरीरी सद्योऽयं व्रजति परमानन्दतनुताम्।।१३।।

(अन्वय)

मातः! मनुष्याः, तिर्यञ्चः, मरुतः— इतीदं लोकत्रयं भवाम्भोधौ मग्नं (तथा) त्रिगुणलहरी कोटिलुठितम् (अस्ति) अत्र क्वचन तव कटाक्षः चेत् करुणया (स्यात्) सदा अयं शरीरी परमानन्दतनुतां सद्यः व्रजति।।१३।।

(अर्थ)

हे माता! मनुष्य - वर्ग, पशु - वर्ग तथा विद्याधर - गन्धर्वादि देव - वर्ग — इस प्रकार के ये सभी तीनों प्राणि - गण संसार रूपी अगाध समुद्र में डूब गये हैं तथा सत्त्वादि गुणत्रय वृत्तियों के सुख, दुःख, मोह रूपी लहरों की धाराओं में लुढ़कते रहते हैं। अब यदि इन में से किसा एक प्राणी पर भी आप की दया-पूर्ण दृष्टि पड़े तो वह देहधारी प्राणी उसी क्षण परमानन्द - दशा को प्राप्त करता है अर्थात् निरावरण चिदाकाश - रूपता को प्राप्त करता है।।१३।।

प्रियङ्गुश्यामाङ्गीमिरूणतरवासः किसलयां
समुन्मीलन्मुक्ता फल बहुलने पथ्य कुसुमाम्।
स्तन द्वन्द्व स्फारस्तबकनमितां कल्पलतिकां(सकृद्धयायन्तस्त्वां
दधति शिवचिन्ता मणिपदम्।।१४।।

(अन्वय)

प्रियङ्गुश्यामाङ्गीम् अरूणतरवासः किसलयां समुन्मीलन्मुक्ताफल बहुलने पथ्यकुसुमां स्तनद्वन्द्व स्फारस्तबकनमिता त्वां कल्पलतिकां सकृत् ध्यायन्तः शिवचिन्तामणि पदं दधति।।१४।।

(अर्थ)

हे माता! आप अभीष्टप्राप्ति - पद होने के फल - स्वरूप एक कल्प - मञ्जरी के समान सुशोभित बनी हुई हैं, जिस लता के मुख - हाथ आदि सभी अंग मानो प्रियङ्गु नामक लता की तरह श्याम वर्ण वाली टहनियां हैं। अत्यन्त लाल दिव्य वस्त्र अत्यन्त कोमल पत्ते हैं। चमकता हुआ मोतियों और रत्नों का समूह मानों उस लता के फल बने हुए हैं। भिन्न - भिन्न प्रकार की वेशभूषा उस के पुष्प हैं और (ज्ञान क्रिया पूर्ण) विकसित दो पुष्ट स्तन मानों उस आप कल्पमञ्जारी के झुके हुए फूलों के गुच्छे हैं — इस प्रकार आप के स्वरूप को पूर्णरूपेण ध्यान करने वाले भक्त, परमशिव - धामात्मक चिन्तामणि - पदवी प्राप्त करते हैं।।१४।।

षडाधारावर्तैर परिमित मन्त्रोर्मिपटलैश
चलन्मुद्रा फेनै र्बहुविधलसद् दैवत झषैः।
क्रम स्रोतोभिस्त्वं वहसि परनादामृतनदी
भवानि! प्रत्यग्रा शिवचिदमृताब्धिप्रणयिनी।।१५।।

(अन्वय)

हे भवानि! त्व षडाधारावर्तैर परिमित मन्त्रोर्मिपटलैः चलन्मुद्रा फेनै र्बहुविधल सद्दैवत झषैः क्रमस्रोतोभिः शिवचिद मृताब्धिप्रणयिनी प्रत्यग्रा परनादामृत नदी वहसि।।१५।।*

(अर्थ)

हे पार्वती! आप नित्य - नवीन पूर्णाहन्ता - परामर्श रूपी अमृत - नदी को धारण करती हैं, जिस में षट् - चक्राधार रूपी भंवर अवस्थित हैं, अनन्त मन्त्र रूपी लहरों की तहें विद्यमान् हैं, स्पन्दमान् करङ्किणी आदि योग - मुद्रा रूपी झाग दृष्टि - गोचर है, अनेक प्रकार के दिव्य दर्शन रूपी मगरमच्छ इस में स्थित हैं और नियमित क्रम से अभ्यास करना ही जिस नदी का प्रवाह है — इस प्रकार यह अमृत नदी चिदानन्दात्मक शिव रूपी अमृत - सागर से प्रेम करती है, अर्थात् उस अमृत - सागर में तन्मय बनने के लिए वेग से उस की ओर बहती रहती है ।।१५।।

मही पाथोवह्नी श्वसनवियदात्मेन्दु रविभि
र्वपुभिर्ग्रस्तांशैरपि तव कियानम्ब! महिमा।
अमून्या लोक्यन्ते भगवति! न कुत्राप्यणुतरा
मवस्थां प्राप्तानि त्वयि तु परम व्योम वपुषि ।।१६।।

---

* षट - चक्राधारों का निर्णय शास्त्रों में इस प्रकार किया है—
जन्माख्ये नाडिचक्रन्तु नाभौ मायाख्यमुच्यते।
हृदिस्थं योगिचक्रं तु तालुस्थं भेदनं स्मृतम्।।
बिन्दुस्थं दीप्तिचक्रं तु नादस्थं शान्तमुच्यते।'

अर्थात् मूलाधार में नाडिचक्र और नाभिस्थान में माया - चक्र ठहरा हुआ है। हृदयस्थान में योगिचक्र और तालुस्थान अर्थात् लंबिका - स्थान में भेदन - चक्र स्थित है, इसी प्रकार भ्रूमध्य में दीप्ति - चक्र विद्यमान् है और नाद अर्थात् ब्रह्मरन्ध्रस्थान पर शान्त - चक्र ठहरा हुआ है ।।१५।।

(अन्वय)

अम्ब! मही - पाथो -वह्नी -श्वसन् - वियद् - आत्मा - इन्दु-रवि-भिवपुर्भिः— ग्रस्तांशैरपि तव कियान् महिमा। भगवति! त्वयि परम व्योम वपुषि तु अणुतरामवस्थां प्राप्तानि अमूनि न कुत्रापि आलोक्यन्ते।।१६।।

(अर्थ)

हे माता! पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, आत्मा, चन्द्रमा और सूर्य, जिन्हों ने संसार - मण्डल - वर्ती सभी कार्य - वर्ग को अपने स्वरूप में समाया है — ऐसे इन स्वरूपों के विकास से आप के स्वरूप की महानता कितनी है — इस का अनुमान कोई भी व्यक्ति नहीं लगा सकता। इस के अतिरिक्त आप की महिमा इतनी अगाध है कि ये सभी आठ मूर्तियां आप के अपरिमित परमाकाश भूमि में इतनी छोटी और सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त होती हैं कि उस आप के परमाकाशभूमि में कहीं भी और किसी प्रकार से दृष्टिगोचर नहीं होती अर्थात् उसी आप के स्वरूप के अथाह समुद्र में बुलबुलों की तरह समा जाती हैं ।।१६।।

कलां प्रज्ञामाद्यां समयमनुभूतिं समरसां
गुरुं पारम्पर्यं विनयमुपदेशं शिवकथाम्।
प्रमाणं निर्वाणं परममतिभूतिं परगुहां
विधिं विद्यामाहुः सकलजननीमेव मुनयः।।१७।।

(अन्वय)

मुनयः सकलजननीमेव त्वां - कलां, आद्यां प्रज्ञाम्, समयम्, समर-सामनुभूतिं गुरुं, पारम्पर्यम्, विनयम्, उपदेशं, शिवकथां, प्रमाण, परमंनिर्वाणम्, अतिभूतिं परगुहां, विधिं विद्यां च आहुः।।१७।।

(अर्थ)

मुनि जन, समस्त संसार को उत्पन्न करने वाली आप परापारमेश्वरी भगवती को ही 'कला' अर्थात् अनाश्रितशिव नाम वाली शक्ति कहते हैं, 'आद्या प्रज्ञा' अर्थात् स्वातन्त्र चमत्कारमयी पर प्रतिभा रूपिणी शक्ति कहते

हैं, 'समय' शिव शक्ति सामरस्यात्मक अवस्था कहते हैं, (समरसामनुभूति) अहन्ता तथा इदन्ता से रहित अनुत्तर - अकुल - में ठहरी हुई चमत्कृति का नाम - करण देते हैं, (गुरु) पारमेश्वरी अनुग्राहिका शक्ति कहते हैं, गुरु परंपरा कहते हैं, (विनय) तन्त्र प्रधान शास्त्र अथवा सच्चिदानन्द-स्वरूप-स्वात्मास्थिति के नाम से विभूषित करते हैं, (उपदेश) शाम्भवोपाय, शाक्तोपाय और आणवोपाय इन तीन मार्गों का स्वरूप कहते हैं, शिवात्मक परामर्श रूप कहते हैं, आप भगवती को ही मुनि जन पर प्रमातृ रूप परम - प्रमाण और परम - मोक्ष रूप परम निर्वाण करके विभूषित करते हैं इस के अतिरिक्त आप जगज्जननी को ही मुनि जन विधिरूप और महामन्त्रमयी विद्या कहते हैं।।१७।।

प्रलीने शब्दौघे तदनु विरते बिन्दुविभवे
ततस्तत्त्वे चाष्ट ध्वनि वपुरुपाधिन्युपरते।
श्रिते शाक्ते पर्वण्यनु कलितचिन्मात्रगहनां
स्वसंवित्तिं योगी रसयति शिवाख्यां पर तनुम्।।१८।।

(अन्वय)

शब्दौघे प्रलीने, तदनु बिन्दुविभवे विरते, ततः अष्ट ध्वनि वपुः उपाधिनि तत्त्वे उपरते, एवं शाक्ते पर्वणि श्रिते योगी अनुकलितचिन्मात्रगहनां शिवाख्यां परतनुं स्वसंवित्तिं रसयति।।१८।।

(अर्थ)

अनथक अभ्यास करता हुआ योगी जब स्वात्म - समावेश की ओर अग्रसर होता है तो प्रथम में उसे दस* प्रकार के शब्दों का समूह प्रादुर्भूत होता है उन समस्त शब्दों के लय होने के पश्चात् बिन्दु - विभव अर्थात् अनन्त प्रकारों वाला प्रकाश - पुंज अनुभव होने लगता है, उस के भी शान्त होने के

---

* शास्त्रों में दशधा नाद निम्न ज्ञान से कहे गये हैं:—

''नदते दशधा सा तु दिव्यानन्द प्रदायिका।
चिनी तु प्रथमः शब्दः चिञ्चिनी तु द्वितीयकः।
चीरवाकी तृतीयस्तु शखशब्दश्चतुर्थकः।
तन्त्री घोषः पञ्चमस्तु षष्ठो वंशरवस्तथा।।
सप्तमः कांस्यतालस्तु मेघशब्दोऽष्ट मस्तथा।
नवमो दावनिर्घोषो दशमो दुन्दुभिस्वनः।।''

इति।

पश्चात् अपने आधारस्थान हृदय में आठ**प्रकार हे दिव्य शब्द प्रकट होते हैं उन के भी उपरत होने पर योगी, शक्ति, व्यापिनी और समना रूपी परा - शक्ति के स्थान पर पहुंच जाता है। तदनन्तर ही यह भाग्य शाली योगी उस स्वात्म - संवित्ति का अनुभव करता है जो चिदानन्द - परामर्श से पूर्ण तथा परापारमेश्वरी का पारमार्थिक परस्वरूप है।।१८।।

परानन्दाकारां निरवधिशिवैश्वर्य वपुषं
निराकारज्ञान प्रकृतिमपरिच्छिन्न करुणाम्।
सवित्रीं लोकानां निरतिशयधामास्पद पदां
भवो वा मोक्षो वा भवतु भवतीमेव भजताम्।।१९।।

(अन्वय)

हे मातः! परानन्दाकारां निरवधिशिवैश्वर्य वपुषं निराकार ज्ञान प्रकृतिम् अपरिच्छिन्न करूणां लोकानां सवित्रीं निरतिशय धामास्पद पदां भवतीमेव भजतां भवो वा मोक्षो वा भवतु।।१९।।

(अर्थ)

हे माता! परम आनन्द - स्वरूप से युक्त, अगाध तथा अनन्त शिवैश्वर्य संपन्न, विश्वोत्तीर्ण निराकार - ज्ञान - स्वरूप तथा सदैव पूर्ण - करुणा - मयी, तीनों लोकों की उत्पत्ति करने वाली और उत्तमोत्तम शिव - धाम में ठहरी हुई आप परापारमेश्वरी को, जो भक्त - जन स्मरण करते हैं, उन्हें सांसारिक भोगों की प्राप्ति हो अथवा परम - आनन्द रूप मोक्ष - प्राप्ति हो, उन्हें दोनों एक तुल्य हैं। तात्पर्य यह है कि उनके लिए सांसारिक भोग भी मोक्ष पर ही पर्यवसित रहते हैं। इस पर आचार्य उत्पल देव ने भी कहा है —

'लब्धत्वत्संपदां भक्तिमतां त्वतपुरवासिनाम्।
सञ्चारो लोकमार्गेऽपि स्यात्तयैव विजृम्भया।।१९।।

**आठ ध्वनियों के नाम ये हैं —
'घोषो नादः स्वनः शब्दः स्फोटाख्यो ध्वनिरेव च।
झाङ्कारो धुङ्कृतिश्चैव अष्टधानाहतः स्मृतः ।।

जगत्काये कृत्वा तमपि हृदये तच्च पुरुषे
पुमांसं बिन्दुस्थं तमपि परनादाख्यगहने।
तदेतज्ज्ञानाख्ये तदपि परमानन्द विभवे
महाव्योमाकारे! त्वदनुभवशीलो विजयते।।२०।।

(अन्वय)

हे मातः! जगत् काये कृत्वा तं हृदये, तच्च पुरुषे, पुमांसं च बिन्दुस्थं कृत्वा, तमपि परनादाख्यगहने,., तदेतत् ज्ञानाख्ये कृत्वा त्वदनुभव शीलः विजयते।।२०।।

(अर्थ)

हे परापारमेश्वरी शक्ति! इस समस्त सर्वतत्त्वमय जगत को लयचिन्तन - धारणा से अपने पांच भौतिक देह में लीन करके, उस अपने शरीर को भी अपने चित्प्रकाश रूपी हृदय में ठहरा कर हृदयस्थान में प्रवेश कराकर, तत्पश्चात् उस हृदय को पुरुष प्रमाण - प्रमेय - उपाधि - युक्त प्रमाता में मिला कर तदनन्तर वह प्रमाता भी प्रमेयादि - उपाधि - रहित प्रकाशात्मक बिन्दु में नियुक्त करके, उस के बाद परप्रकाशात्मक बिन्दु भी पर - नाद अर्थात् अहं परामर्शात्मक गंभीर स्थान में पहुंचा कर, अर्थात् निद्रा और जाग्रत की बीच वाली तुर्यरूपा अवस्था में ले जाकर, तत्पश्चात् उस तुर्यरूप अवस्था को भी पारमार्थिक ज्ञानरूपी परमानन्द के ऐश्वर्य में अर्थात् जगदानन्द रूप अवस्था में लय करके जो जगदानन्द उत्तमोत्तम महान अनुत्तर प्रकाश स्वरूप है, वहां पहुंच कर जो व्यक्ति आप के स्वतंत्र चिदानन्द - घन स्वरूप का साक्षात्कार करता है उस की जय हो।।२०।।

विधे विद्ये वेद्ये विविधसमये वेदजननि!
विचित्रे! विश्वाद्ये विनयसुलभे वेदगुलिके!!
शिवाज्ञे शीलस्थे शिवपदवदान्ये शिवनिधे!
शिवे मातर्मह्यं त्वयि वितर भक्तिं निरूपमाम्।।२१।।

(अन्वय)

हे विधे! हे विद्ये! हे वेद्ये! हे विविधसमये! हे वेदजननि! हे विचित्रे! हे

विश्वाद्ये! हे विनयसुलभे! हे वेदगुलिके! हे शिवाज्ञे! हे शीलस्थे! हे शिवपदवदान्ये! हे शिवनिधे! हे शिवे! हे मातः मह्यां त्वयि निरूपमां भक्तिं वितर।।२१।।

(अर्थ)

हे समस्त जगत का निर्माण करने वाली माता! हे विधि - स्वरूप सृष्टि कारिणी! हे विद्या - चतुष्टय रूपी देवी! हे स्वात्मरूपता से जानने योग्य! हे अनन्त प्रकार के आचरणों वाली! हे तीन वेदों की उत्पत्ति करने वाली! हे विचित्र रूप अर्थात् अत्यन्त अद्भुतरूप बनी हुई! हे जगत की आद्य अर्थात् समस्त संसार का बीज बनी हुई! हे विनय अर्थात् कौल आदि शास्त्रों के द्वारा सहज ही प्राप्त होने वाली देवी! हे समस्त वेदों का सार बनी हुई! हे स्वच्छन्द नाथ शिव की आज्ञा बनी हुई अर्थात् पांच प्रकार के शास्त्र का स्वरूप बनी हुई! हे अपने स्वातंत्र्यनाम वाले शील महिमा में ठहरने वाली भगवती! सच्चिदानन्दरूप शिव - पद को देने वाली हे देवी! ऐहिक और पारलौकिक कल्याणों की कोषरूपा अर्थात् हे (सभी जनों को सुख देने वाली) भगवती हे महादेव शंकर भगवान् की अर्धाङ्गिनी! मुझे अपने स्वरूप में अनुरक्त बना दीजिए अर्थात् मुझे अपना अनुपम दास बनाइये ।।२१।। *

विधेर्मुण्डं हृत्वा यदकुरूत पात्रं करतले
हरिं शूलप्रोतं यदगमयदंसाभरणताम् ।
अलञ्चक्रे कण्ठं यदपि गरलेनाम्ब! गिरिशः
शिवस्थायाः शक्तेस्तदि दमखिलं ते विलसितम्।।२२।।

---

* परा पारमेश्वरी ही चार विद्याओं में प्रकट बनी हुई है। इस संबन्ध में विष्णु पुराण में यह श्लोक कहा है –

'यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्या च शोभने।
आत्मविद्या च देवी त्वं विमुक्ति फलदायिनी।।'

अर्थात् हे भगवती आप ही चार विद्याओं का स्वरूप धारण करके भक्त - जनों को मुक्ति प्रदान करती हैं। वे विद्यायें ये हैं–यज्ञविद्या, महाविद्या, गुह्यविद्या और आत्मविद्या ।

* बृहदारण्यक उपनिषद में भी कहा है –

"अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमे -
तद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदः"

इस से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि वेदों की जननी पारमेश्वरी शक्ति ही है।

(अन्वय)

हे अम्ब! गिरिशः विधेर्मुण्डं हृत्वा यत् करतले पात्रम् अकुरुत, हरिं शूल प्रोत यत् अंसा भरणताम् अगमयत्, यदपि गरलेन कण्ठम् अल च्चक्रे, तदिदं शिवस्थायाः ते शक्तेः एव विलसितम्।।२२।।

(अर्थ)

हे माता! कैलास - वासी शंकर भगवान् ने ब्रह्माजी का सिर काट कर उसे अपने हाथ का पात्र बनाया, भगवान विष्णु को अपने त्रिशूल में धंसा कर उन्हें अपने कंधे पर रख कर अपना आभूषण बनाया और कालकूट - विष का पान करने से अपने कण्ठ को विभूषित किया। परन्तु यह सारा कार्य शिव ने तब किया जब उस के स्वरूप में आप परा पारमेश्वरी शक्ति ठहरी थीं। भाव यह है कि यह शिव का सारा चरित्र आप का ही चरित्र था। आप के बिना शिव कुछ भी नहीं कर सकता है। ।।२२।।*

विरिञ्च्याख्या मातः। सृजसि हरिसंज्ञा त्वमवसि
त्रिलोकीं रुद्राख्या हरसि पिदधासी श्वरदशाम्।
भवन्ती सादाख्या शिवयसि च पाशौघदलिनी
त्वमेवैकानेका भवसि कृतिभेदै र्गिरि सुते।।२३।।

(अन्वय)

हे मातः! त्वं विरिञ्च्याख्या सृजसि, हरिसंज्ञा अवसि, रुद्राख्या त्रिलोकीं हरसि, ईश्वर दशां भवन्ती पिदधासि, सादाख्या पाशौघदलिनी शिवयसि च। हे गिरिसुते! इत्येवं एका त्वमेव कृतिभेदैः अनेका भवसि।।२३।।

---

* हरि यमराज को भी कहते हैं। पुराणों के कथनानुसार जब श्वेत नाम वाले भक्त को यम - राज ने निग्रह करना चाहा था तो उस समय अपने भक्त श्वेत को बचाने के लिए भगवान् शंकर प्रकट हुए और यमराज को अपने त्रिशूल में धंसाया और श्वेत भक्त पर अनुग्रह किया।

कहा भी है —

"शिवः शक्तया युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं।
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।"।।२२।।

(अर्थ)

हे माता! आप सृष्टिरूप कृत्य की अधिष्ठात्री (ब्रह्मा) बन कर जगत् को उत्पन्न करती हैं, स्थितिरूप कृत्य की अधिष्ठात्री (विष्णु) बनी हुई इस भव - अभव तथा अति भवात्मक संसार का पालन करती हैं, संहृति रूप कृत्य की अधिष्ठात्री (रुद्र) नाम से विभूषित होकर इस का संहार करती हैं, तिरोधानकर्म की अधिष्ठात्री अर्थात् ईश्वरदशा को धारण करके इस समस्त जगत् का पिधान करती हैं और सदाशिव - संज्ञा प्राप्त करके आप इस जगत् के सभी पाश - आणव आदि मल काट कर इस का अनुग्रह करती हैं। हे पर्वतराज पुत्री! इस प्रकार आप वास्तव में एक स्वरूप वाली होकर भी सृष्टि - स्थिति - संहार - विलय और अनुग्रह करती हैं। हे पर्वतराज पुत्री! इस प्रकार आप वास्तव में एक स्वरूप वाली होकर भी सृष्टि - स्थिति - संहार - विलय और अनुग्रह रुपी पांच कृत्यों को धारण करके अनेक बन जाती हैं, अर्थात् आप ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव इन पांच कारणों का स्वरूप धारण करती हैं।।२३।।

मुनीनां चेतोभिः प्रमृदित कषायैरपि मनाग्
अशक्ये संस्प्रष्टुं चकित चकितैरम्ब सततम्।
श्रुतीनां मूर्धानः प्रकृतिकठिनाः कोमलतरे
कथं ते विन्दन्ते पदकिसलये पार्वति!पदम्।।२४।।

(अन्वय)

हे अम्ब! प्रमृदित कषायैरपि सततं चकितः मुनीनां चेतोभिः संस्प्रष्टु मशक्येते कोमलतरे पदकिसलये। अतः हे पार्वति! श्रुतीनां मूर्धानः प्रकृतिकठिनाः ते पदम् कथं विन्दन्ते।।२४।।

(अर्थ)

हे माता! काम क्रोध आदि मानसिक विकारों का नाश करके भी मुनि - जनों के मन सदैव भय - ग्रस्त होने के कारण आप के अत्यन्त कोमल ज्ञानक्रियात्मक पद - पंकज का स्पर्श नहीं कर पाते। इस लिए हे पार्वती! वेदादि श्रुतियों के शिरोमणि अर्थात् ऋग् आदि तीन वेदों में जो प्रधान बने

हुए उपनिषद् भाग हैं, स्वभाव से वे सारे उपनिषद् अकोमल और कर्कश हैं वे आप के कोमलतम स्थान को कैसे प्राप्त हो सकते हैं अथवा प्राप्त करा सकते हैं।।२४।।*

तडिद्वल्लीं नित्यामृतसरितं पाररहितां
मलोत्तीर्णां ज्योत्स्नां प्रकृतिमगुणग्रन्थि गहनाम्।
गिरां दूरां विद्यामविनत कुचां विश्वजननी
मपर्यन्तां लक्ष्मीमभिदधति सन्तो भगवतीम्।।२५।।**

(अन्वय)

सन्तो भगवतीम् नित्यां तडिद्वल्लीं, पाररहितां अमृतसरितं, मलोत्तीर्णां ज्योत्स्नां, अगुण ग्रन्थिगहनां प्रकृतिं, गिरां दूरां विद्यां, अविनत कुचां विश्व जननीम् (एवम्) अपर्यन्तां लक्ष्मीम् अभिदधति।।२५।।

(अर्थ)

हे माता! सन्त - जन आप को, सदा रहने वाली बिजली की रेखा के समान, बिना तटों के अमृत - नदी - तुल्य, कलंक - रहित चान्दनी के सदृश, सत्त्व आदि गुण रूपी ग्रन्थियों से रहित प्रकृति के समान, वाणी का अविषय बनी हुई विद्या के तुल्य, ज्ञान क्रिया रूपी स्तनयुग्मों के अविनत होकर भी अर्थात् ज्ञानक्रिया - शक्तियों के बहिर्भावावस्था न प्राप्त करते हुए ही जगत की

---

* कहा भी है –

'तत्त्वज्ञस्य तृणं शास्त्रम्'।

गीता में भी कहा है –

'तदा गन्तासि निर्वेदं
श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च'।

उपनिषदों में भी–

''यतो वाचो निवर्तन्ते'' इत्यादि ।।२४।।

** इस श्लोक में कवि, परा परामेश्वरी भगवती की चित्चमत्कृतिमयी कुण्डलिनी शक्ति की ओर संकेत करता है। इस विषय में कहा भी है –

मूलाधारादुत्थितवल्लीं विधिरन्ध्रं।
सौरं चान्द्रं धाम विहाय ज्वलिताङ्गीम् ।।
ध्येयां सूक्ष्मामसूक्ष्मतरां तां तडिदाभाम्।।२५।।

उत्पत्ति करने वाली माता के समान, तथा न समाप्त होने वाली लक्ष्मी के समान अर्थात् मोक्ष लक्ष्मी रूपा वर्णन करते हैं।।।२५।।

शरीरं क्षित्यम्भः प्रभृतिरचितं केवलमिदं
सुखं दुःखं चायं कलयति पुमांश्चेतन इति।
स्फुटं जानानोऽपि प्रभवति न देही रहयितुं
शरीराहंकारं तव समय बाह्यो गिरिसुते ।।२६।।

(अन्वय)

हे गिरि सुते! अयं चेतनः पुम्रान् केवलं क्षिति - अम्भः– प्रभृतिरचितं इदं शरीरं, सुखं दुःखं च कलयति। इत्येव तव समयबाह्यःदेही स्फुटं जानानः अपि शरीराहंकारं रहयितुं न प्रभवति।।२६।।

(अर्थ)

हे पर्वतराज पुत्री! यह चेतन पुरुष केवल पृथ्वी आदि पांच भूतों से निर्मित बने हुए अपने शरीर को वेदकरूपता से और सुख तथा दुःख को वेद्यरूपता से जान लेता है अर्थात् पांच भौतिक जड शरीर पर आत्माभिमान धारण करता है। इत्यतः आप के रहस्य - मय गुरु - मुख से वञ्चित बना हुआ यह देहधारी अपने शरीर का आत्माभिमान छोड़ने के लिये समर्थ नहीं होता, यद्यपि उसे भली भांति यह ज्ञान है कि यह मेरा शरीर जड ही है। यह देहाभिमान छैं प्रकार से शास्त्रों में वर्णित है –

संपन्नोऽस्मि कृशोऽस्मि स्निह्यत्करणोऽस्मि मोदमानोऽस्मि।
प्राणिमि शून्योऽस्मीति च षट्सु पदेष्वस्मिता दृष्टा।।

इस नीति से यह छै प्रकार का अभिमान जीव त्याग नहीं सकता।।२६।।

पिता माता भ्राता सुहृदनुचराः सद्म गृहिणी
वपुः, पुत्रो मित्रं धनमपि यदा मां विजहति।
तदा मे भिन्दाना सपदि भयमोहान्धतमसं
महाज्योत्स्ने! मातर्भव करुणया सन्निधिकरी ।।२७।।

(अन्वय)

हे मातः! (देहत्यागावसरे) यदा पिता, माता, भ्राता, सुहृत्, अनुचराः, सद्म,

गृहिणी, वपुः, पुत्रः, मित्रं धनमपि मां विजहति, तदा हे महाज्योत्स्ने! मे भयमोहान्धतमसं सपदि भिन्दाना त्वं करुणया सन्निधिकरी भव ।।२७।।

(अर्थ)

हे माता! जिस देहत्यागक्षणात्मक मृत्यु के समय मुझे अपना पिता, माता, भाई, सखा, घर, पुत्र, गृहिणी, मित्र, धन तथा शरीर--ये सारे के सारे परवश होकर छोड़ने पड़ेंगे, उस समय हे महाप्रकाशमयी भगवती! आप कृपा करके सभी भय, मोह और अन्धकार आदि विघ्नों को काट देना और मुझे अपना तुच्छ सेवक समझ कर दर्शन देना ।।२७।।*

सुता दक्षस्यादौ किल सकलमातस्त्वमुदभूः
सदोषं तं हित्वा तदनु गिरिराजस्य तनया।
अनाद्यन्ता शम्भोरपृथगपि शक्तिर्भगवती
विवाहाज्जायासीत्यहह चरितं वेत्ति तव कः ।।२८।।

(अन्वय)

हे सकलमातः! आदौ त्वं किल दक्षस्य सुता उदभूः। तदनु सदोषं तं हित्वा गिरिराजस्य तनया (सम्पन्नासि)। शम्भोरपृथगपि अनाद्यन्ता भगवती शक्तिः (त्वं) विवाहात् जायासि। अहह इति तव चरितं कः वेत्ति ।।२८।।

(अर्थ)

हे जगज्जननी मां! सृष्टि के आरम्भ में पहिले आप राजा दक्षप्रजापति की पुत्री बन गईं। उस के पश्चात् दोष-युक्त उस प्रजापति का त्याग करके हिमालय की कन्या बनीं। आप यदि तत्त्वदृष्टि से भगवान शंकर से अभिन्न होकर आदि और अन्त से रहित भी हैं तथापि उस शंकर भगवान् के साथ विवाह करके उनकी पत्नी बन गईं। इस प्रकार के आप के लीलामय चरित

---

* तत्त्वदृष्टि से जगज्जननी पारमेश्वरी का साक्षात्कार अपने स्वात्म-प्रयत्न से कदापि नहीं प्राप्त हो सकता है। उस के लिए पराशक्ति का केवल अनुग्रह ही पर्याप्त है। कहा भी है--
'नात्र स्वात्मीयः पुरुषकारः कोऽपि निर्वहति'
अर्थात् परादेवी के साक्षात् दर्शन-प्राप्ति के निमित्त अपना पुरुषकार सर्वथा अकिंचित्कर है। ।।२७।।

को कौन जान सकता है अर्थात् आप का लीलामय-स्वातंत्र्य सर्वथा अगम्य है ।।२८।।*

कणास्त्वद्दीप्तीनां रविशशिकृशानुप्रभृतयः
परं ब्रह्म क्षुद्रं तव नियतमानन्दकणिका।
शिवादिक्षित्यन्तं त्रिवलयतनोः सर्वमुदरे
तवास्ते भक्तस्य स्फुरसि हृदि चित्रं भगवति!।।२९।।

(अन्वय)

हे भगवति! रविशशिकृशानुप्रभृतयः त्वद् दीप्तीनां कणाः। परं ब्रह्म अपि क्षुद्रं सत् तव आनन्द-कणिका (इति मया) नियतम्। शिवादिक्षित्यन्तं सर्वं तव त्रिवलयतनोः उदरे आस्ते-इति सर्वं चित्रम्। इत्येवं भक्तस्य हृदि स्फुरसि।।२९।।

(अर्थ)

हे भगवती! सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि आदि सभी प्रकाश आप की रश्मियों के कण-मात्र हैं। परिपूर्ण शिव रूप ब्रह्म भी आप के महान् तेज के सामने क्षुद्र अर्थात् तुच्छ बना हुआ उस आप के अगाध तेज का एक कण है—यह तो मैंने समझ लिया है। इस के अतिरिक्त शिव तत्त्व से लेकर पृथिवी तक सभी तत्त्व भी त्रिवलयाकार कुण्डलिनी के बीच में ठहरे हुए हैं। इस प्रकार आप का आश्चर्य-पूर्ण स्वरूप आप के भक्त के हृदय में अनुभव किया जाता है।।२९।।**

---

* वास्तव में पारमेश्वरी शक्ति शिव के साथ सदैव अभिन्न है। कहा भी है—

'शक्तिश्व शक्तिमद्रूपाद्व्यतिरेकं न वांछति।
तादात्म्यमनयोर्नित्यं वह्निदाहिकयोरिव।।

इत्यादि।

** जिस तेज के सामने सूर्यादि विश्ववर्ती तेज, कण-मात्र प्रतीत होते हैं उस तेज की महानता कितनी विशाल होगी-यह आश्चर्य है। जहां पूर्ण चित्प्रकाश स्वरूप शिव भी एक अल्प तेज का कण सा प्रतीत होता है-वह तेज कितना आश्चर्यमय होगा। इस के अतिरिक्त जहां सारे छतीस तत्त्व उदर में ही ठहरे होंगे वह पराशक्ति कितनी विशाल और बड़ी होगी-यह भी बड़े आश्चर्य की बात है। इस विषय में कहा भी है—

'त्रैलोक्ये ऽप्यत्र यो यावानानन्दः कश्चिदीक्ष्यते।
स बिन्दुर्यस्य तं वन्दे देवमानन्दसागरम्।।'

अर्थात् महान् से महान् आनन्द इस त्रिलोकी में जो भी कोई देखने में आता है, वह आनन्द जिस महान् आनन्द-सागर का एक बिन्दु है, उस आनन्द समुद्र को मैं प्रणाम करता हूं।।२९।।

त्वया यो जानीते रचयति भवत्यैव सततं
त्वयैवेच्छत्यम्ब! त्वमसि निखिला यस्य तनवः*।
गतः साम्यं शम्भुर्वहति परमं व्योम भवती
तथाप्येवं हित्वा विहरति शिवस्येति किमिदम्।।३०।।

(अन्वय)

हे अम्ब! यः त्वया जानीते, भवत्यैव सततं रचयति, त्वयैव इच्छति, यस्य निखिला तनवः त्वमसि, स शम्भुः (त्वत्स्वरूपे)साम्यं गतः परमं व्योम वहति। तथापि भवती एवं शिवस्य हित्वा विहरति इति किमिदम् ।।३०।।

(अर्थ)

हे माता! जो शिव आप की ही परापरारूपिणी ज्ञान** शक्ति से समस्त प्रमाण-प्रमेयादि जगत को जान लेता है, आप की ही अपराशक्ति रूपा कियाशक्ति से इस जगन्मण्डल की रचना करता है और आप की ही परारूपा इच्छा शक्ति से इस जगत को फिर से अपने स्वरूप में लय करके संहृत करता है। इस के अतिरिक्त जिस शिव की सभी आठ मूर्तियां आप ही बनी हुई हैं, इस प्रकार जो शिव आप के स्वरूप-साम्य को प्राप्त हुआ परमाकाश रूप शून्य-धाम में चला गया है, अर्थात् सदा के लिए आप के स्वरूप में लीन होकर अपनी सत्ता समाप्त करता है। ऐसा होकर भी आप इस शिव की अनारब्ध रूपता को छोड़ कर इस के साथ फिर से विहार करती हैं—यह तो क्या है? अर्थात् यह आप की लीला मुझे आश्चर्य-चकित कर देती है ।।३०।।

पुरः पश्चादन्तर्बहिरपरिमेयं परिमितं
परं स्थूलं सूक्ष्मं सकुलमकुलं गुह्यमगुह्म्
दवीयो नेदीयः सदसदिति विश्वं भगवती
सदा पश्यन्त्याज्ञां वहसि भुवनक्षोभजननीम् ।।३१।।

---

* शिव की आठ मूर्तियों के नाम ये हैं—

पृथ्वी, अग्नि, यजमान, सूर्य, जल, वायु, चन्द्रमा और आकाश। अथवा भवदेव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, महादेव, भीम और ईशान।।३०।।

** शिव जब जगत को जानता है तो समझना चाहिये कि उस की स्थिति होती है, रचनात्मक व्यवहार से शिव सृष्टिकर्ता और इच्छात्मक-क्रिया से उस की संहर्तृता का संकेत समझना चाहिए।।३०।।

(अन्वय)

हे भगवति! पुरः पश्चाद्, अन्तर, बहिः, अपरिमेयं परिमितं, परं, स्थूलं, सूक्ष्मं, सकुलम्, अकुलं, गुह्यम्, अगुहं, दवीयो नेदीयः सदसत्-इति सर्वं विश्वं ये त्वदभक्ताः सदा "ईं" कामकला- स्वरूपमेव पश्यन्ति, तेषां त्वं भुवनक्षोभजननीम् आज्ञां वहसि ।।३१।।

(अर्थ)

हे भगवती! सामने, पीछे, भीतर, बाहर, अनन्त, परिमित, पर, स्थूल, सूक्ष्म, साकार, निराकार, गुप्त, प्रकट, अत्यन्त दूर, समीप, सत् और असत्—इस प्रकार के सारे संसार को जो आप के भक्त-जन ईं अर्थात् कामकला का स्वरूप ही देखते हैं उनके लिये तो आप अपनी उत्तमोत्तमा आज्ञा अर्थात् अनुग्रह धारण करते हैं जिस के फलस्वरूप वे आप के भक्त, समस्त भुवनों की अङ्गनाओं को चलायमान् करते हैं। भाव यह है कि वे भक्त समस्त संसार पर शासन करते हैं ।।३१।।*

मयूखाः पूष्णीव ज्वलन इव तद्दीप्तिकणिकाः
पयोधौ कल्लोल प्रतिहतमहिम्नीव पृषतः।
उदेत्योदेत्याम्ब! त्वयि सह निजैस्तात्त्विककुलै-
र्भजन्ते तत्त्वौघाः प्रशममनुकल्पं परवशाः ।।३२।।

---

* जब पारमेश्वरी का भक्त उस के ईम्" इस कामकला स्वरूप बीजाक्षर की उपासना करता है तब वह समस्त भुवनों में ठहरी हुई स्त्रियों पर विजय प्राप्त करता है। इस पर शास्त्रों में कहा भी है—

महाकामकलाध्यानयोगात्तु सुरवान्दिते।
क्षोभयेत् स्वर्गभूर्लोकपातालतलयोषितः।।

इति। तथा

यदैव जपते विद्यां महात्रिपुरसुन्दरीम्।
तदैव मातृचक्राज्ञा संक्रामत्यस्य विग्रहे।।
सर्वासां सर्वसस्थानां योगिनीनां भवेत् प्रियः।।

अतः 'ईं'—इस महात्रिपुरसुन्दरी के जप करने से साधक में विश्वाकर्षणात्मिका शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। इस 'ईं' बीजाक्षर की जपविधि गुरु-मुख से ही समझनी चाहिए।।३१।।

(अन्वय)

हे अम्ब! पूष्णि मयूखाः इव, ज्वलने तद्दीप्तिकणिकाः इव, कल्लोल प्रतिहत महिम्नि पयोधौ पृषतः इव तत्त्वौघाः निजैः तात्त्विक कुलैः सह त्वयि उदेत्य उदेत्य अनुकल्पं परवशाः सन्तः प्रशमं भजन्ते ।।३२।।

(अर्थ)

हे माता! जिस भांति भगवान् सूर्य की किरणें उसी से उदित होकर उसी में लय होती हैं, जिस प्रकार अग्नि की चिंगारियां अग्नि से उदय करके उसी में समाप्त होती हैं और जिस भांति ऊर्मिसंतति से महान् समुद्र से जल की बून्दें उसी से उदित होकर उसी में चली जाती हैं अर्थात् समा जाती हैं ठीक उसी भांति अपने अपने तत्त्व-संबन्धी श्रेणियों सहित ये सभी छत्तीस तत्त्व आप पारमेश्वरी भगवती से उदित होकर प्रत्येक प्रलयकाल में आप के स्वरूप में विवश होकर समा जाते हैं अर्थात् आप के स्वरूप में ही लय होते हैं।।३२।। *

विधुर्विष्णुर्ब्रह्मा प्रकृतिरणुरात्मा दिनकरः
स्वभावो जैनेन्द्रः सुगतमुनिराकाशमनिलः।
शिवः शक्तिश्चेति श्रुतिविषयतां तामुपगतां
विकल्पैरेभिस्त्वामभिदधति सन्तो भगवतीम् ।।३३।।

(अन्वय)

हे अम्ब! विधुः, विष्णुः, ब्रह्मा प्रकृतिः, अणुः, आत्मा, दिनकरः, स्वभावः, जैनेन्द्रः सुगतमुनिः, आकाशम्, अनिलः, शिवः, शक्तिश्च—इति एभिः

---

* तत्त्वदृष्टि से सारा संसार-मण्डल चित्तत्त्वचमत्कृतिरूप परा शक्ति से उदय करता है और फिर से उसी में समा जाता है जैसा कि अष्टावक्रगीता में कहा है—

मय्यनन्ते चिदम्भोधावाश्चर्यं जीववीचयः।
उद्यन्ति घ्नन्ति खेलन्ति प्रविशन्ति स्वभावतः।।

इस के अतिरिक्त विज्ञानभैरव-शास्त्र में इसी आशय की ओर इस निम्न श्लोक में संकेत किया है—

जलस्येवोर्मयो वह्नेर्ज्वालाभङ्गयः प्रभा रवेः।
ममैव भैरवस्यैता विश्वभङ्ग्यो विनिर्गताः ।।

इत्यादि ।।३२।।

विकल्पैः तां श्रुतिविषयतां उपगतां त्वां भगवतीम् सन्तः अभिदधति ।।३३।।

(अर्थ)

हे माता! चन्द्रमा, विष्णु,ब्रह्मा, प्रकृति, जीवात्मा, परमात्मा, सूर्यदेवता, परमशिव का स्वरूप, बौद्धों के श्रेष्ठगुरु महात्मा बुद्ध, आकाश, वायु, शिव और शक्ति–इन विकल्पात्मक शास्त्रोक्त नामों से सन्त-जन आप महात्रिपुर सुन्दरी को ही पुकारते रहते हैं। भाव यह है कि जितने भी नाम संसार में हैं वे सभी नाम आप जगद्रूपिणी माता के ही हैं ।।३३।।*

प्रविश्य स्वं मार्गं सहजदयया देशिकदृशा।
षडध्वध्वान्तौघच्छिदुरगणनातीत करुणाम्।
परानन्दाकारां सपदि शिवयन्तीमपि तनुं
स्वमात्मानं धन्याश्चिरमुपलभन्ते भगवतीम् ।।३४।।**

(अन्वय)

धन्याः सहजदयया देशिकदृशा स्वं मार्गं प्रविश्य षडध्व-धान्तौघच्छिदुर-गणनातीतकरुणां, तनुमपि सपदि शिवयन्तीं परानन्दाकारां स्वमात्मानं भगवतीं चिरम् उपलभन्ते ।।३४।।

(अर्थ)

पराशक्ति भगवती के शक्तिपात से पवित्र बने हुए भाग्यशाली भक्त-जन सहजदयामय सद्गुरु के कटाक्ष से अपने परम-धाम में प्रविष्ट होकर

---

* इस श्लोक के आशय का संकेत करते हुए भगवद्गीता में भी कहा है–

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्तेश्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्।।

अर्थात् जो भक्त मेरे से भिन्न अन्य अग्नि आदि देवताओं की उपासना करते हैं, वे भी पारमार्थिक दृष्टि से मेरी ही उपासना करते हैं।।३३।।

* इस श्लोक में 'धन्य' का अर्थ है–

''धनं–भगवद्भक्ति सौभाग्यरूपं लब्धारो जनाः धन्याः''
अर्थात् जो प्रभु-शक्ति-रूप सौभाग्य प्राप्त करते हैं, वे धन्य कहलाते हैं।।३४।।

स्वात्म-स्वरूपात्मिका भगवती को सदा के लिए प्राप्त करते हैं, जो भगवती समस्त षडध्वारूपी अन्धकार को काटने से अत्यन्त करुणामयी है और क्षणमात्र में भक्त की आत्मा को शिवमय बनाती है और इसी लिए परानन्द रूप बनी हुई है ।।३४।।

शिवस्त्वं शक्तिस्त्वं त्वमसि समया त्वं समयिनी
त्वमात्मा त्वं दीक्षा त्वमयमणिमादिर्गुणगणः।
अविद्या त्वं विद्या त्वमसि निखिलं त्वं किमपरं
पृथक्तत्त्वं त्वत्तो भगवति! न वीक्षामह इमे।।३५।।

(अन्वय)

हे भगवति! त्वं शिवः, त्वं शक्तिः, त्वं समया असि, त्वं समयिनी, त्वमात्मा, त्वं दीक्षा, अयमणिमादिर्गुणगणः त्वम्, त्वमविद्या, विद्या त्वमसि, त्वं निखिलं, किमपरम्। इमे वयं त्वत्तः पृथक्तत्त्वं न वीक्षामहे ।।३५।।

(अर्थ)

हे सर्वैश्वर्यसंपन्ना माता! आप ही शिव हैं, आप अनुग्रहकारिणी शक्ति हैं, आप ही सृष्टि आदि द्वादशदेवी-चक्रों में ठहरी हुई विधि अर्थात् उपाय बनी हुई हैं, आप ही समयिनी अर्थात् उन अनाख्य-विधियों का संचालन करने वाली हैं, (प्रत्येक अनाख्य- विधियों से साधक को मध्य-धाम में ले जाने वाली हैं) आप ही आत्मा हैं, आप ही आत्म-ज्ञान देने वाली और पाशों को नष्ट करने वाली दीक्षा हैं, ये अणिमादि आठ सिद्धियां भी आप ही हैं, स्वरूप-अख्याति रूपिणी अविद्या और स्वरूप-विकास रूप विद्या भी आप ही हैं। वह कौनसी वस्तु है जो आप नहीं हैं। आप की अनुग्रहशक्ति से पवित्र बने हुए हम आप के भक्त आप के स्वरूप से भिन्न कुछ भी नहीं देखते हैं ।।३५।।

असंख्यैः प्राचीनैर्जननि! जननैः कर्मविलया-
द्गते जन्मन्यन्ते गुरुवपुषमासाद्य गिरिशम्।

अवाप्याज्ञां 'शैवीं क्रमतनुमपि त्वां विदितवान्
नयेयं त्वत्पूजास्तुतिविरचनेनैव दिवसान् ।। ३६।। *

(अन्वय)

हे जननि! असंख्यैः प्राचीनैः जननैः कर्मविलयात् गते—लब्धे अन्ते जन्मनि, गिरिशं गुरुवपुषं आसाद्य, 'शैवीमाज्ञामपि अवाप्य क्रमतनं (अक्रमक्रमा-क्रमक्रमरूपां) त्वां विदितवान् (अहं) त्वत्पूजा स्तुतिविरचनेनैव दिवसान् नयेयम् ।। ३६।।

(अर्थ)

हे माता! पूर्वकालीन अनन्त जन्मों में देव-नर-पशु-पक्षी आदि शरीरों को धारण करते करते निरर्गल आप की अनुग्रहमयी शक्ति से, कर्मफलों के समाप्त होने पर यह अन्तिम जन्म मैंने प्राप्त किया है। इस मोक्षप्राप्ति-प्रद जन्म में भगवान् ** शंकर को गुरु केरूपमें प्राप्त करके, उन शिवरूप गुरु-देव से 'शैवी दीक्षा से संयुक्त होकर आप परमेश्वरी की क्रमरूपता का अर्थात् आप के नरशक्ति-शिवात्मक त्रिकरूपता का साक्षात्कार करके इस अन्तिम जन्म के शेष दिन आप की पूजा और स्तुति करते करते ही बिता दूँ।। ३६।।

(अन्वय)

यत्षट्पत्रं कमलमुदितं तस्य या कर्णिकाख्या
योनिस्तस्याः प्रथितमुदरे यत्तदोंकारपीठम्।
तस्मिन्नन्तः कुचभरनतां कुण्डलीतः प्रवृत्तां
'श्यामाकारां सकलजननीं सन्ततं भावयामि ।। ३७।।

यत् षट्पत्रं कमलम् उदितम् तस्य या कर्णिकाख्या योनिः, तस्याः उदरे प्रथितं यत्तत् ओंकारपीठम्, तस्मिन् अन्तः कुण्डलीतः प्रवृत्तां कुचभरनतां 'श्यामाकारां सकलजननीं सन्ततम् (अहं) भावयामि ।। ३७।।

---

* पारमार्थिक दृष्टि से गुरु शिव रूप ही मानना चाहिये। शिव और गुरु में तनिक भी अन्तर नहीं है इसी लिए कवि ने 'गुरुवपुषं गिरिशम्' —इस शब्द का प्रयोग किया है। कहा भी है—

यस्मान्महेश्वरः साक्षात् कृत्वा मानुष्यविग्रहम्।
कृपया गुरुरूपेण मग्नाः प्रोद्धरति प्रजाः ।। ३६।।

* तत्त्वदृष्टि से पारमेश्वरी संविच्छक्ति क्रमाकार है। इस संविद्भगवती में अभेदरूपता से अक्रमता भेदाभेदरूपता से क्रमाक्रमरूपता और भेदरूपता में नरसंबंधी क्रमरूपता है। अतएव शास्त्रों में इस पृथ्वी की त्रिकरूपता सार्थक है।। ३६।।

(अर्थ)

जो इच्छाज्ञानक्रिया के शिवशक्त्यात्मक अवस्था में षड्दल रूपी कमल उदित-रूपता में विकास करता है, उस षट्कोण में जो योनि के आकार में कर्णिका है, उसी के बीच में ओंकार का पीठ है, उस पीठ पर ऊर्ध्व-कुण्डालिनी* का स्वरूप धारण करती हुई श्यामवर्णवाली ज्ञान-क्रियात्मक स्तनयुगलों से जगदानन्द-पदवी की ओर प्रसारित होती हुई समस्त विश्व को शिवरूपता में प्रकट-करती हुई महात्रिपुर सुन्दरी को मैं सदा के लिए प्रणाम करता हूँ अर्थात् उस में समावेश करता हूँ।।३७।।

भुवि पयसि कृशानौ मारुते खे शशाङ्के
सवितरि यजमानेऽप्यष्टधा शक्तिरेका।
वहति कुचभराभ्यां या विनम्रापि विश्वं
सकलजननि! सात्वं पाहि मामित्यवश्यम् ।।३८।।

(अन्वय)

हे सकलजननि! या एकापि शक्तिः भुवि, पयसि, कृशानौ, मारुते, खे, शशाङ्के, सवितरि यजमाने च अष्टधा (भूत्वा) कुचभराभ्यां विनम्रापि विश्वं वहति, सा त्वम् अवश्यम् मां पाहि ।।३८।।

(अर्थ)

हे समस्त जगत् को उत्पन्न करने वाली माता! आप, चिच्चमत्कृतिमयी स्वातंत्र्यशक्ति एक होकर भी विश्वमयदशा में पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य और आत्मा-इन आठ स्वरूपों में विकसित हुई हैं। यद्यपि आप अपने ही ज्ञानक्रियात्मक स्तनरूपी रश्मिचक्रों की व्याप्ति से

---

* उच्च कोटि के योगी कुण्डलिनी का स्वरूप तीन अवस्थाओं में अनुभव करते हैं। पहिली अवस्था कुण्डलिनी की शान्त अवस्था कहलाती है। इस का अनुभव मूलाधार में होता है। इस को सुप्त-कुण्डलिनी का नाम दिया गया है। जब यह अहंपरामर्श की अधिकता से प्रबुद्ध हो जाती है तब इस कुण्डलिनी को शान्तोदित-कुण्डलिनी कहते हैं। इस का दूसरा नाम अधःकुण्डलिनी है। इस के पश्चात् जब यह दण्डाकाररूपता को धारण करती हुई ब्रह्मरन्ध्रस्थान तक उदित होती है तो फिर ऊर्ध्वकुण्डलिनी का स्वरूप धारण करती हुई जगदानन्द की अवस्था का अनुभव कराती है। इस श्लोक में कुण्डलिनी के इसी उदित अवस्था की ओर संकेत है।।

अपने विश्वव्यापी असंख्यशक्तियों से झुकी भी हैं, तथापि ऐसा होकर भी आप समस्त जगत् की सृष्टि, स्थिति, संहार, विलय और अनुग्रह करने का कार्य अनायास में ही धारण करती हैं। इत्यतः मुझे भी अवश्य धारण करके रक्षा कीजिये अर्थात् अपने अनुत्तर धाम में प्रविष्ट करायें।।३८।।*



इति शिवम्

पञ्चमः सकलजननीस्तवः समाप्तः

---

* इस श्लोक का सारांश यह है कि पारमेश्वरी संविद्देवी एक होकर ही अनेक रूपों में अवतरित हुई है। प्रथमतः उस का अवतार केवल आठ रूपों में हुआ है। वह आठ रूप हैं पांच महाभूत, प्राण अपान और आत्मा। तत्त्वदृष्टि से इन पांच रूपों से ही इसकी विश्वमयता की ओर संकेत है। इन्हीं पांच रूपों में सभी छत्तीस तत्त्व अन्तर्भूत हैं। यह छैत्तीस तत्त्व रूपी संसार जब विश्वोत्तीर्ण-पद प्राप्त करता है तब वह एक रूप अर्थात् शिव-रूप कहा जाता है और जब विश्वमय-रूपता को ग्रहण करता है तब यह अनेकरूप शक्ति कहा जाता है। इस विषय में कहा भी है—

"नौम्यनुत्तरनाथस्य रश्मिचक्रमहं सदा।
शिवशक्तीति विख्यातं परापरफलप्रदम्।।"

अर्थात् अनुत्तर-नाथ के शक्तिचक्र को मैं प्रणाम करता हूँ जो शिव और शिव शक्ति के नाम से अलंकृत हुआ है और पर-फल-मोक्ष और अपर-फल-भोग को देता है।।

जम्मू: ८ फरवरी १९७४.



शैवाचार्य महात्मा श्री लक्ष्मण जी महाराज

श्री पंचस्तवी
सर्वाधिक लोकप्रिय एवं प्रामाणिक

मुनय: प्रकृतिं
श्रुतिरहस्यविदो
शंकर रूप
शरणं प्र

... पर महान आत्माओं ने जन्म लिया है। उन्हीं में आचार्य ... जी एक महान विभूति हैं। आपने अपने प्रदेश कश्मीर ... का प्रचार एवं प्रसार किया है। आपके द्वारा शैव मत का ... एवं अनुकरणीय है। साधारण मानव के लिये आपने ... रूपान्तरण कर एक अलौकिक कार्य किया है।



